कणिका में

प्राउट

(द्वादश खण्ड)

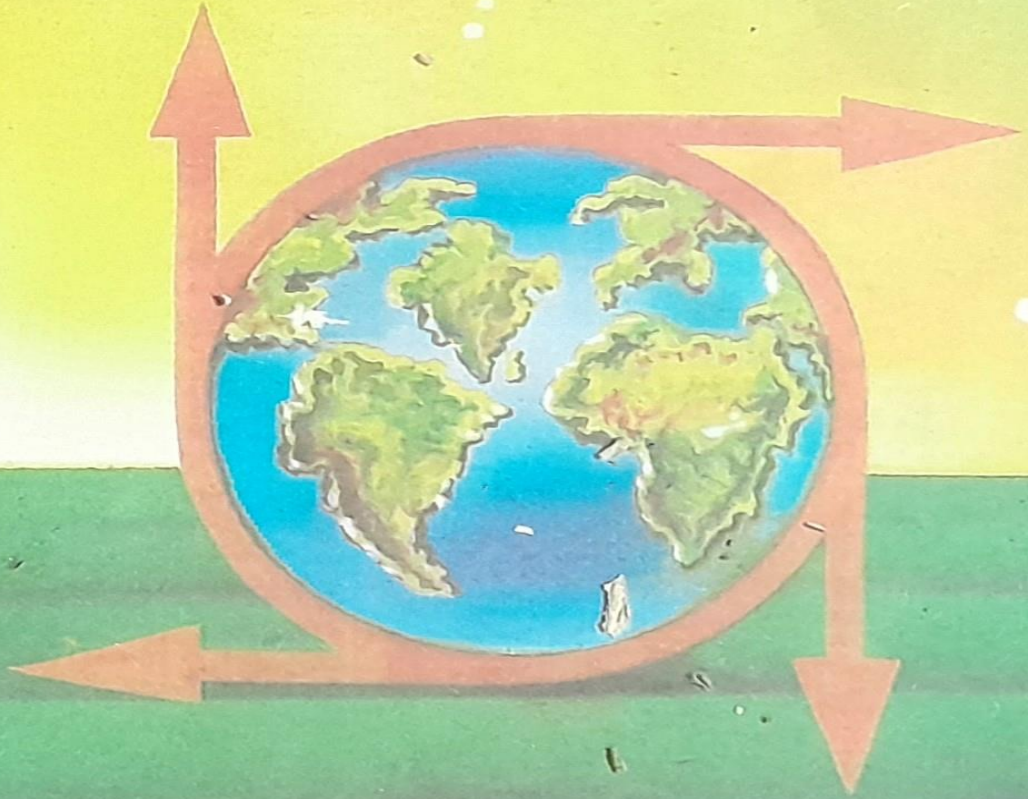

श्री प्रभात रंजन सरकार

कणिका में प्राउट

(द्वदश खण्ड)

श्रीप्रभातरञ्जन सरकार

सूचीपत्र

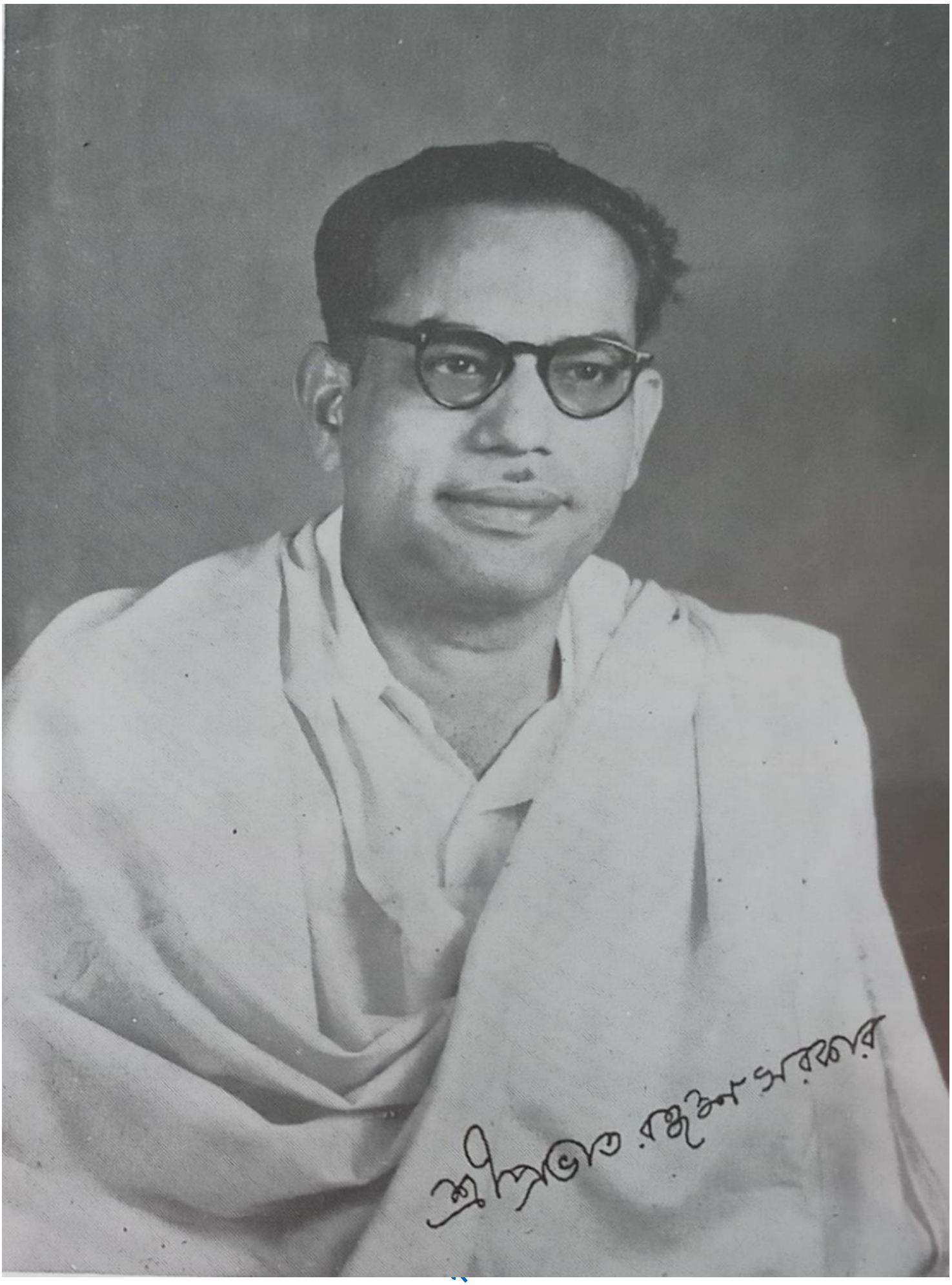

শ্রীপ্রভাত রঞ্জন সরকার

आनन्दमार्ग प्रचारक संघ द्वारा सर्वस्वत्व संरक्षित

आचार्य समन्वयानन्द अवधूत द्वारा मूल बंगला से अनुदित

प्रकाशक :

आचार्य कृष्णात्मानन्द अवधूत

प्रकाशन सचिव

आनन्दमार्ग प्रचारक संघ (रजिष्टर्ड)

भि. आई. पी नगर, तिलजला

कलिकाता-३६,

प्रथम संस्करण- १ जनवरी, १६६२ ई०

मुद्रक :

आचार्य पीयूषानन्द अवधूत

आनन्द प्रिन्टर्स, तिलजला, कलिकाता-३६

सूचीपत्र

रु.-12:00

प्राप्तिस्थान :

आनन्दमार्ग प्रचारक संघ

भि. आई. पी नगर, तिलजला

कलिकाता-३६,

सूचीपत्र

रोमन संस्कृत वर्णमाला

विभिन्न भाषाओं का ठीक - ठीक उच्चारण करने के लिए तथा द्रुतलेखन के प्रयोजन को समझकर निम्नलिखित पद्धति से रोमन संस्कृत वर्णमाला का प्रवर्त्तन किया गया है

অ	আ	ই	ঈ	উ	ঊ	ঋ	ৠ	ঌ	ৡ	এ	ঐ	ও	ঔ	অং	অঃ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
a	á	i	ii	u	ú	r	rr	lr	lrr	e	ae	o	ao	aḿ	ah

ক	খ	গ	ঘ	ঙ	চ	ছ	জ	ঝ	ঞ
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ka	kha	ga	gha	uṇa	ca	cha	ja	jha	iṇa

सूचीपत्र

ট ঠ ড ঢ ণ ত থ দ ধ ন

ট ঠ ড ঢ ণ ত থ দ ধ ন

ṭa ṭha ḍa ḍha ṇa ta tha da dha na

প ফ ৰ ভ ম

প ফ ব ভ ম

Pa pha ba bha ma

য র ল ব

য র ল ব

ya ra la va

শ ষ স হ ক্ষ

শ ষ স হ ক্ষ

sha śa sa ha kśa

सूचीपत्र

অঁ জ্ঞ ঋষি ছায়া জ্ঞান সংস্কৃত ততোঽহং

अँ ज्ञ ऋषि छाया ज्ञान संस्कृत ततोऽहं

aṋ jiṋa rśi cháyá jiṋána saḿskrta tato’haḿ

a á b c d d́ e g h i j k l m ḿ n
ń ṋ o p r s ś t t́ u ú v y

समग्र विश्व में बहुत प्रचारित रोमन लिपि के २९ अक्षर मात्र से संस्कृत भाषा का ठीक - ठीक उच्चारण किया जाना सम्भव है । इसमें युक्ताक्षर का भी झमेला नहीं है । अरबी , फारसी और अन्यान्य f, q , gh , z , प्रभुति अक्षरों का प्रयोजन रहता है , संस्कृत में नहीं । शब्द के मध्य या शेष में ' ड ' , ' ढ ' यथाक्रम ' ड़ ' और ' ढ़ ' ' रूप में उच्चारित होते हैं । ' य ' (जहाँ ' य ' का उच्चारण ' इ ' , ' अ ' होता है) के समान

सूचीपत्र

वे भी कोई स्वतंत्र वर्ण नहीं हैं। प्रयोजन के अनुसार और असंस्कृत शब्द लिखने के समय ŕa और ŕha व्यवहार किया जा सकता है।

गैर- संस्कृत शब्द लिखने के लिए दिए गए दश अतिरिक्त अक्षर

ক়	খ়	জ়	ড়	ঢ়	ফ়	য়	ল়	ৎ	অঁ
क़	ख़	ज़	ड़	ढ़	फ़	य़	ल़	त्	अँ
qua	qhua	za	ŕ	ŕha	fa	ya	lra	t	aṋ

सूचीपत्र

सूचीपत्र

युक्ति राजत्व

पाप, अपराध और कानून

आस्तित्विक प्राणिनता का उत्स

मानस आभोग का मानसाध्यात्मिक आभोग में रूपान्तरण

अर्थ को चलायमान रखो

सुसमञ्जस अर्थनीति

अर्थनीति की चार धाराएँ

वाणिज्य और विनिमय

प्रखण्डभित्तिक तथा आन्तप्रखण्ड परिकल्पना

शासन व्यवस्था के कई रूप

आदर्श संविधान के लिये प्रयोजनीय उपकरण

सेवा-मनस्तत्व और गौष्ठी-मनस्तत्व-

सूचीपत्र

कई प्रश्नोत्तर

युक्ति राजत्व

यह सौर्यजगत पर्याप्त धन से परिपूर्ण है। सिर्फ मनुष्य के लिये ही नहीं बल्कि सभी जीव जगत के खाने पीने तथा सर्वात्मक विकाश के लिये पर्याप्त सम्पत्ति यहां है। किन्तु हमारे क्षुद्र चिन्तन व दुर्बुद्धि के कारण हम लोग यथार्थ समाधान खोज नहीं पाये हैं। हमारे इस पृथ्वी में जितना वन का भाण्डार छिपा है सभीको विश्व के समस्त प्राणी-समूह की रक्षा एवं विकाश के लिये हमें उपयुक्त काम में लगाना होगा ।

सूचीपत्र

हमारी पृथ्वी एक जटिल युग परिवर्तन के काल से गुजर रही है। इन समस्याओं का तुरंत समाधान अति आवश्यक हैं। इसमें थोड़ा भी विलम्ब करना उचित नहीं होगा। इसलिये सारे विश्व में, विशेष कर इस पृथ्वी पर प्राउट (Prout) का प्रचार करना होगा। अल्प समय में इसका प्रचार एवं कार्य-रूप तुम सभी को करदेना उचित होगा ।

तुम सभी जानते हो मनुष्य के जीवन में, सिर्फ राजनैतिक, 'अर्थनैतिक एवं सामाजिक क्षेत्र सब कुछ नहीं है। वह मानस एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी महान है। मानसाध्यात्मिक प्रगति और प्रसारण के लिए नव्यमानवतावाद के आदर्श को सभी दिशाओं में फैलाना होगा; क्योंकि एकमात्र आध्यात्मिकता ही जीवन के अन्य क्षेत्रों का निय ंत्रण रखती है।

सूचीपत्र

मानव शरीर पांचभौतिक तत्वों से बना है। इसलिए शारीरिक बीमारियों को ठीक करने के लिए भौतिक विज्ञान का ही उपयोग करना होगा। शारीरिक एवं मानसिक व्याधि को दूर करने के लिए अणुजीवत् (Microvita) की सहायता से जीव विज्ञान को और विकसित करना होगा। यह अणुजीवत् (Microvita) धनात्मक (Positive) और ऋणात्मक (Negative) दो प्रकार से काम कर सकता है। आध्यात्मिक प्रगति के लिए अणुजीवत् (Microvita) का उचित उपयोग करना अच्छा होगा ।

मनुष्य का सांस्कृतिक जीवन भी है। मनुष्य के जीवन में बहुत सी साधारण तथा प्रकृतिक वृत्तियाँ हैं। स्वभावगत कुछ वृत्तियाँ उन्नति के पथ में और कुछ

अवनति के पथ में ले जाती है। जो वृत्ति मनुष्य को उन्नति के पथ में ले जाती है, उसे प्रोत्साहन देना उचित होगा। और जो वृत्ति अवनति के पथ में ले जाती है, उसे अप्रोत्साहन देना होगा। इस पृथ्वी पर मनुष्य को अनेक जगह नग्नचित्र एवं अश्लील साहित्य द्वारा अवनति की दिशा में ले जाया जा रहा है। साधारण प्रतिवाद के माध्यम से उसका नियंत्रण करना सम्भव नहीं है। इसलिये हमें सक्रीय रूप से इसका उपाय सोचना होगा। तभी सम्पूर्णरूप से मनुष्य के मन में एक आलोड़न सृष्टि करना सम्भव होगा। यही हमारा वास्तविक कर्म होगा। हमको नूतन साहित्य-शिल्प-दर्शन और स' गीत की रचना करनी होगी। और करना होगा नूतन वाद्य की रचना अर्थात समाज में एक नूतन सांस्कृतिक आलोड़न पैदा करना होगा। ये हमें तुरंत

करना होगा। इसके लिये हमें उपयुक्त परिकल्पना एवं तद्रूप काय करना होगा ।

दुःख की बात है कि आज निरीह मनुष्यों को सर्वभक्षी दानवों की कृपा पर निर्भरशील रहना पड़ रहा है। निरोह पशु-पक्षी नरपिशाचों की कृपा के ऊपर ही निर्भरशील है। पेड़-पौधे भी आज मानवरूपी दानवों की कृपा पर निर्भर हैं। ये मनुष्यरूपी दानव नये पेड़ तो लगाते नहीं वरन् बिना विचार किये जंगल का उजाड़ कर रहे हैं। नयी नयी मरुभूमि पैदा कर रहे हैं। मनुष्य के चिन्तनजगत और अर्थनैतिक क्षेत्र में एक बड़ी बुद्धि की दुर्बलता दिखाई पड़ रही है। ३०० साल पूर्व दक्षिण अफ्रिका में कोई मरुभूमि नहीं थी। १५०० साल पूर्व भारत में भी कोई मरुभूमि नहीं थी। इस तरह क्या जगत में, सृष्ट जीव प्राणो को मनुष्यरूपी दानवों की

कृपा के ऊपर निर्भर रहना होगा ? प्राउट, नव्यमानवतावाद माइक्रोवाइटा शिल्पकला, साहित्य, संगीत वाद्य और सर्वश्रेष्ट आध्यात्मिक साधना की सहायता से, मनुष्य की समस्त समस्याओं का समाधान करना होगा। यही वर्तमान विश्व के सभी समस्याओं का एक मात्र दबा है।

पृथ्वी में पेट्रोलियम का अभाव हो सकता है किन्तु पेट्रोलियम तैयार करने के उपादानों की कमी नहीं है। कृत्रिम पेट्रोलियम (Synthetic Petroleum) बनाया जा सकता है ।

हम चाहते है कि विश्व में युक्ति का राजत्व हो (Rule of Rationality) मानव समाज एक और अविभाज्य

है। आपात दृष्टि से विचित्रता हो सकती है, किन्तु वास्तविक में सभी फल्गुधारा की भाँति एक दूसरे से जुटे हुए हैं। जिस प्रकार मध्य पूर्व में मुसलमान, यहुदी, क्रीस्तान गोरे और काले सभी रहते है। वे लोग मूल रूप से एक ही महान परमपिता के सन्तान हैं। आनन्दमार्ग का आध्यात्मिक दर्शन भी यही कहता है। समाज, रूढ़िवादिता के कारण, वैश्य वृत्ति से ग्रसित है। पृथ्वी में आनन्दमार्ग का दर्शन ही एकमात्र उन्नत दर्शन है।

समस्या और उसकी समाधान के बारे में हम स्पष्ट हैं। विश्व के कोने कोने में आनन्दमार्ग की यह वाणी पहुँचाना हमारा कत्र्तव्य है। आज सर्वत्र हमारे अनुकूल हवा बह रही है। जीव जगत के रोम रोम में, अणु-परमाणु में आनन्दमार्ग के इस महान संदेश को शीघ्रातिशीघ्र पहुंचा देना होगा ।

सूचीपत्र

(३१-८-८७, कोलकाता)

पाप, अपराध और कानून

तुम लोग निश्चित रूप से जानते हो कि साधारण अर्थ में हमलोग धर्म विरोधी काम को पाप (Sin) और सामाजिक नियमों के विरोध को अपराध (guilt or crime) कहते हैं। पाप को कभी साधारण अर्थ में और कभी विशेष अर्थ में व्यवहार करते हैं। साधारण अर्थ में पाप का मतलब पातक भी समझा जाता है। पातक के मुख्यतः दो भाग हैं: एक प.प और दूसरा प्रत्यवाय । जो अकरणीय है, उसे यदि कोई करे तो पाप और जो

करणीय है उसे न करे तो प्रत्यवाय कहा जाता है। पाप और प्रत्यवाय दोनों ही अवाञ्छनीय है। फिर भी प्राचीन मुनि-ऋषि ने पाप से अधिक प्रत्यवाय को निन्दनीय कहा है। पातक के तीन स्तरभेद हैं- १) पातक, २) अतिपातक और ३) महापातक ।

थोड़े प्रयास या त्याग द्वारा प्रायश्चित्त करने से जिस पाप की प्रतिक्रिया नष्ट होती है, साधारण भाषा में उसे ही पातक कहते हैं। समझो, किसीने किसी की दो सौ रुपया की चोरी की। चोर यदि व्याज सहित या व्याज से अधिक पैसा मिलाकर वह राशि मालिक को वापिस कर क्षमा माँगले तो साधारण अर्थ में कहा जायेगा, पातक का प्रायश्चित्त हो गया है। किसी के मन को यदि कोई चोट पहुंचाये और उसके पास जाकर क्षमा मांगे या बार बार क्षमा याचना करे और यदि उसको

क्षमा कर दिया जाय तो उस पातक का प्रायश्वित्त हुआ, ऐसा समझा जाता है।

अतिपातक के लिये आवश्यकता है कठोर प्रायश्चित्त की। यदि किसी कारणवश गलती से किसी का भविष्य नष्ट हो जाय तो उसे अतिपातक कहेंगे। साधारण भाषा में अतिपातक का प्रायश्चित्त नहीं हो सकता, ऐसा समझा जाता है। किन्तु, वह मनुष्य यदि अन्तःकरण से मनत्राण से जीवन प्रयन्त जिसकी स्थायी क्षति की हो या भविष्य नष्ट किया हो उस की सहायता करे, सेवा करे और यदि वह उसको क्षमा कर दे तो उसका प्रायश्चित्त हो सकता है, ऐसा समझा जाता है। किन्तु ऐसा क्या सम्भव है? जिनकी स्थायो क्षति की हो, क्या वह मनप्राण से क्षमा करेगा ? इतिहास में अतिपातक का अनेक उदाहरण देखने को मिलता है।

सूचीपत्र

अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बिसार की हत्या की थी। अतिपातक को श्रेणी में आता है। राजा शशाङ्क ने र।ज्यवर्धन को निमन्त्रण कर बुला लिया और हत्या कर दी। यह भी अतिपातक कार्य हुआ। हर्षवर्धन ने जिस तरीके से शशाङ्क की पत्नी जयशङ्करी और उनके अवयस्क पुत्र की हत्या की थी वह भी अतिपातक कर्म है। सबसे अवम पातक को महापातक कहा जाता है। महापातक और अतिपातक के मध्य एक मौलिक पार्थक्य है। अतिपातक की घटना को लोग भूल सकते हैं, लोगों के ऊपर इस क्रिया का स्थायो प्रभाव नहीं भी पड़ सकता है। किन्तु महापातक की घटना का इतिहास के ऊपर या मानव समाज के ऊपर स्थायी रूप से खराब प्रभाव पड़ता है। रावण सीता का हरण यदि सहज रूप से करता तो अतिपातक की श्रेणी में आता, किन्तु साधु रूप में हरण किया है, इसलिए महापातक की श्रेणी में

गिना जायेगा, चूंकि इस घटना का इतिहास में खराब प्रभाव पड़ा है। साधु के प्रति महिलावर्ग का विश्वास कम होते जा रहा है। साधु के वेश में घोर पाप का काम किया। साधु के प्रति विश्वासघात हुआ। आज भी सन्यासी को देखकर कुलनारी सोच सकती है कि कहीं चोर रावण की तरह साधु वेश में तो नहीं आया है। इससे साधु की मर्यादा कम होती है। रावण ने

पातक की एक शाखा है प्रत्यवाय, जिसका अर्थ होता है- जिसे करना उचित है, उसे न करना । उदाहरणस्वरूर-योग्य माँ वाप काँ चाहिए कि अपने पुत्र-पुत्री को उचित शिक्षा प्रदान करे ताकि वे आत्मनिर्भरशील बन सकें (सुशिक्षित एवं स्वनिर्भर कन्या का विवाह का विचार कन्या पर छोड़ देना उचित होगा)। उपकार करने वाले का उपकार मानना ही उचित है, धर्म

पथ पर चलना उचित है। किन्तु यदि कोई इस उचित काम को न मानकर इसके विरुद्ध काम करे तो वह प्रत्यवाय की श्रेणी में आता है।

स्वीकृत विधि के विरुद्ध काम को अपराध कहा जाता है। अनेक जनगोष्ठी, अनेक राष्ट्र अपने-अपने निजी विधि-कानून के ऊपर टिके हैं। विधि, जब राष्ट्र को सुचारुरूप से चलाने के लिए बनायी जाती है, तब उसे राष्ट्रविधान (Constitution) और जब समाज को न्याय प्रदान के लिए होता है, तब उसे समाजविधान, कानून (Law) कहा जाता है। कहीं यह राष्ट्र संविधान या राष्ट्रविधान और कहीं पर समाज विधान विराधी काम को अपराध की श्रेणी में गणना करते हैं। कुछ कार्डिनल ह्यमन प्रिन्सिप्ल (Cardinal Human Principle) को छोड़कर बहुत' क्षेत्रों में विभिन्न जनगोष्ठी की भाषा में

पार्थक्य है। यही कारण है कि विभिन्न 'विभिन्न जनगोष्ठी की राष्ट्र संविधान व्यवस्था एवं न्यायविधि में विभिन्नता है। इसलिए मनुष्य को विभिन्न देशों में रहने के लिए विभिन्न संविधान, समाजविधि तथा न्यायविधि का पालन करना पड़ता है। नहीं तो उन्हे अपराध की श्रेणी में आना पड़ता है। विश्व में जितना भी मौलिक मानवीय नीति है, उसको परिधि को विकसित कर विभिन्न देश के संविधान, शासन व्यवस्था, विचार व्यवस्था या नियम व्यवस्था की संघरचना की जाय तो मानव एकता की दिशा में एक अच्छा कदम होगा। मानवतावाद या नव्य-मानवतावाद की एकता पथ पर नया संवेग मिलेगा। मनुष्य के मौलिक एकीकरण को प्रोत्साहन देने से एवं विभिन्नता को निरुत्साहन देने से, एकदिन एकभौमिक समाज की रचना हो जायेगी। यह कोई कोरी कल्पना का रंगीन

चित्र नहीं है, इससे मनुष्य प्रमा का वास्तविक एवं प्राथमिक परिचय मिलेगा ।

काम को करने से स्नायुतन्तु और मन में एक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। यदि कोई काम वा भावना मन को किसी काम से दूर रखने की प्रेरणा जगाती हो, तो उस काम के प्रति मनमें प्रतिक्रियात्मक मनो-भावना पैदा होती है। घृणा भो ऐसी प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति का परिणाम है। घृणा एक आरोपित (Imposed) मानसिक बन्धन है। इसलिए यह अष्टपाश घृणा, लज्जा, भय शंका, कुल, शील, मान, युगुप्सा के अन्दर आविर्भूत है।

जो वृत्ति मानसिक जगत में उत्पन्न हो कर बाहरी जगत को प्रभावित करे, उसे 'रिपु' कहते हैं। और

जो वृत्ति वाहरी जगत में उत्पन्न होकर मानसिक जगत को प्रभावित करे उसे "पाश" कहते हैं। रिपु है अन्त-वाहिरिक (Intro-External) एवं पाश है वाह्य-आन्तरिक (Extro-Internal) बुद्धिमान मनुष्य रिपु को नियन्त्रित रखते हैं और पाश को प्रतिरोध करते है। मुनि-ऋषिने रिपु के प्रतिरोध व्यवस्था (दवाकर) का विचार नहीं दिया हैं। चूंकि रिपु को यदि प्रतिरोध कर रखा जाय तो वह दूसरे रिपु वृत्ति द्वारा अभिप्रकाश होता है। रिपु है काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य । इन रिपु-समूह का यही दोष है। किसी की यदि लोभ-वृत्ति प्रबल है और यदि अभाव के कारण लोभ-वृत्ति को नियन्त्रण में रखने को बाध्य है, तो कभी भी वह विस्फोट रूप धारण कर सकती है। जिस प्रकार से घूस लेने वाला, भ्रष्टाचार उन्मोलन विभाग के डर से घूस न ले सके, तो उनकी यह लोभ वृत्ति क्रोध या अन्य किसी रिपु वृत्ति के

माध्यम से व्यक्त होगी और वह विस्फोटक होगी । इसलिए मनःतात्विक विधि से ही रिपु को संयम में रखना होगा। किसी भी परिस्थिति में समाज या सामाजिकता के विरुद्ध में जाने नहीं देना होगा। किन्हीं को खाने की वृत्ति खूत्र प्रवल है। अधिक भोजन करना या निषिद्ध भोजन खाना उसके अस्वाथ्य वा अकाल मृत्यु का कारण हो सकता है। इसलिए वह अपने लोभवृत्ति को नियन्त्रण में रखे और इस प्रकार से नियन्त्रण में रखे कि रोग न होने पावे । उदाहरणस्वरूप नशापान करने वाला शराब के नशा का गुलाम हो जाता है। यदि वह उन नशा को गान, छवि या सूक्ष्म कला या सूक्ष्म चर्चा द्वारा एक रचनात्मक दिशा की ओर प्रसरित करे, तो उसकी क्षति होना रुक सकता है।

प्राचीनकाल में पाश को, वरिष्ठ मनुष्य बलपूर्वक प्रतिरोध (Suspension) कर रोकने की, व्यवस्था पर जोर देते थे। भय वृत्ति पर काबू पाने के लिए भय के उद्‌गम स्रोत की ओर द्रुतगति से जाना होगा, इसके लिए शारीरिक एवं मानसिक अस्त्र के साथ जाना होगा। भय के डर से घर में छिपकर बैठे रहने से भय नहीं हट सकता। मन में यह विचार अच्छी तरह से रखना होगा कि 'रिषु को नियन्त्रण द्‌वारा और पाग को प्रतिहत (Resistence) द्‌वारा ही काबू किया जा सकता है। इस पाश से छुटकारा पाने के लिए मनुश्य को साधना करनी होगी- मन को ऐश्वर्य दिशा की ओर ले जाना होगा ।

"पाशवद्‌धो भवेज्जीवो पाशमुक्तः भवेच्छिवः"

जो पाश के बन्धन में है वह है जीत्र और जो पाश से मुक्त है वह है शिव ।

२२ मार्च, १९८६, कलकत्ता

शब्दचयनिका भाग ४।

आस्तित्विक प्राणिनता का उत्स

हमारे आस्तित्विक सम्भावना का सब कुछ अणुचैतण्य से ही उत्सारित है। वह भौतिक स्तर में, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के माध्यम से कार्यकरता है, मानसिक स्तर में वह चित्तवृत्तियों के माध्यम से और

आध्यात्मिक स्तर में वह मानसाध्यात्मिक पद्धति के माध्यम से नियन्त्रित होते हुए आगे बढ़ता है। ये तीनों मिलकर हमारे आस्तित्विक प्राणिनता Existential Stamina को तैयार करता है।

अब प्रश्न उठता है कि इस (आस्तित्विक प्राणिनता) का उत्स वया है ? यह क्या भावप्रवणता (sentiment) युक्ति (logic) लक्ष्य (desideratum) अथवा कर्मेषणा (actional faculty) है ?

वस्तुतः उत्तर है- "इनमें से कोई भी नहीं है" वास्तविक में हमारे आस्तित्विक प्राणिनता का यथार्थ उत्स अणुचैतण्य को छोड़ और कुछ नहीं है ।

प्रत्येक सत्ता की संस्थिति निहित है चित्त पर, चित्त अहम्तत्व पर और अहम्तत्व निहित है महत तत्व पर। किन्तु महत्तत्व का 'मैं हू (I am) बोध जीवात्मा के साक्षित्व के अभाव में नहीं हो सकता है। "मैं हू" इस वोध को जानने के लिए हमें ('ज्ञ') वोध की आवश्यकता होती है, अर्थात् "मैं जानता हूँ, मैं हूँ"" (I know, I am)। प्रथम "मैं जानता हू" का बोध होता है, तत्पश्चात बोध होता है "मैं हू" का। इसलिए आस्तित्विक सत्ता का मूल स्रोत 'मैं जानता हूँ", कि मैं हू" इस "मैं" के ऊपर निहित है। और यही आत्मा, अणुचैतन्य या जीवात्मा ही हमारा चरम् परिणति है। अभी, मैंने जो चार प्रकार की मानसप्रवणता के (भाव-प्रवणता, युक्ति, लक्ष्य और कर्मेषणा) के विषय में कहा, उनकी सीमाबद्धता कहाँ है ?

भावप्रवणता : (Sentiments) अभिव्यक्ति के लिये मन को विशेष विशेष प्रकार के चित्ताणुसंजात विषय को ग्रहण करना ही पड़ता है। यही मानस विषय (प्यार, घृणा, भय इत्यादि) "वृत्ति" नाम से परिचित है। वृत्ति को मन की अभिव्यक्ति का एक माध्यम कह सकते हैं। मानसिक स्तर में यह अभिव्यक्त वृत्ति, ही अभिव्यक्त भ वप्रवणता हुई। संक्षेप में भावप्रवणता हुआ मानसिक शक्ति का वाह्यिक प्रक्षेप, यह युक्तिपूर्ण हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। फलतः भावावेग किसी समय भावजड़ता द्वारा प्रभावित हो सकता है। इसलिए एक अनिश्चित सत्ता (भावप्रवणता) हमारे आस्तित्विक प्राणिनता के आदि स्रोत नहीं हो सकता है। भावप्रवणता, एक विशुद्ध मानसिक विषयक है, इसलिए हमारे सात्विक प्राणिनता का मूल स्रोत नहीं हो सकता ।

सूचीपत्र

युक्तिवाद : (Logic) युक्तिवाद तीन चीजों पर आधारित है। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम । आगम उद्भूत होता है प्रामाण्य पुस्तक वा प्रामाण्य व्यष्टि से । दूर्भाग्यवश ज्ञान के ये तीनों स्रोत सम्पूर्णरूप से निर्भरयोग्य नहीं है। प्रत्यक्ष ज्ञान के समय हमारे ज्ञानेन्द्रिय का सामथ्यं सीमित होने के कारण सिद्धान्त गलत हो सकता है। ज्ञानेन्द्रियसमूह की त्रुटि होने के कारण या पारिपाश्विकता की त्रुटि से सिद्धान्त गलत हो सकता है। यथेष्ट और प्रकृत उपकरण नहीं होने से अनुमान भी गलत हो सकता है। और अंत में आगम, काल और पात्र (Place and time) के प्रथाव के कारण गलत सिद्धान्त, मनुष्य को परिचालित कर सकता है और करेगा भी ।

लक्ष्य : प्रथम तो मनुध्य का लक्ष्य अवश्य ही निर्धारित होना चाहिये । यदि किसी का जीवनलक्ष

धनोपर्जन या प्रसिद्धि प्राप्त करना है अथवा मृत्यु उपरांत पूराणवणित स्वर्ग राज्य का पासपोर्ट प्राप्ति करना हो सकता है, तो निश्चित ही यह भीषण विपज्जनक है। किन्तु लक्ष्य यदि ठीक भी हो अर्थात् यदि पूर्णताप्राप्ति या परमपुरुष के साथ एकात्म प्राप्त करना मात्र लक्ष्य हो भो, तो यह हमलोगों की आस्तित्विक प्राणिनता का स्थायी आदि उत्स नहीं हो सकता है। मानलो, मनुष्य संसार-सागर में अपनी जीवन नौका, परमपुरुष रूपी ध्रुवतारा की सहायता से परिचालित करता है। यह तो ठोक है। किन्तु यदि चित्ताकाश पाश-रिपू रूपी मेघ से आछन्न हो जाय, तो क्या होगा ? वस्तुतः अनेक वृत्ति, संस्कार, पाश और रिपु मेघ की भाँति मनुष्य को प्रभावित करता हैं। इसलिए लक्ष्य ठीक होने पर भी निर्भरयोग्य नहीं है।

कर्मेषणा : काम के उद्देश्य से काम करने से मुक्ति नहीं मिलती है। वरन, इससे मनुष्य और अधिक कर्म-बन्धन में बंध जाता है। प्रत्येक कर्म से संस्कार निर्माण होता है। सुकर्म हो या कुकर्म दोनो बन्धन का कारण है। जब संस्कार बढ़ता ही है, तब मन स्थूलत्व प्राप्त करता है। स्वर्ण श्रृंखल वा लौह शृंखल हो दोनों समान कष्ट-दायक है। दूसरे जीवन में मनुष्य पशु, वृक्ष यहाँ तक इट-काठ-पत्थर भी बन सकता है। अतः कर्मेषणा भी हमारे आस्तित्विक प्राणिनता का उत्स के रूप में स्वीकृत नहीं हो सकता है।

इस तरह स्पष्ट भाव से देखा जाता है कि भावप्रवणता, युक्तिवाद, लक्ष्य और कर्मेषणा ये चारो में से कोई भी हमारे आस्तित्विक प्राणिनता का मूल उत्स नहीं हो सकता है। चाहे जो भी हो, हम इन चारों तत्वों

की उपेक्षा भी नहीं कर सकते । कारण, उसका दोषत्रुटि होने के पश्वात् भी वह आस्तित्विक प्राण के मूल स्रोत की और जाने में सहायता कर सकती है ।

भावप्रवणता यदि नय्य-मानवतावाद द्वारा परिचालित हो तब भक्तिपथ में मानवता को प्रगतिपथ में सहायता करेगा । तर्क शास्त्र यदि विचारप्रवण मानसिकता के द्वारा परिचालित हो, तब समाज से भौम-भावप्रवणता को खतम कर सकता है। और यदि बोधि द्वारा परिचालित हो तब जीवन के सर्वक्षेत्रों में आलोकत्तिका की भूमिका ले सकता है।

मानसाध्यात्मिक साधना हो, हमारे जीवन-आकाश से समस्त मेघ को नष्ट कर सकती हैं। इसलिए लक्ष्य

के सम्बन्ध में हमारी स्पष्ट धारणा, युक्ति, अभ्रान्तभाव से पथ में चलने में सहायता करती है।

इस प्रकार लक्ष्य प्राप्ति के तीनों उपाय मधुविद्या, कर्तृत्वाभिमान और फलाकांक्षा त्याग, कर्म बन्धन को नष्ट कर देता है।

अंत में यही कहूँगा कि - इन चार तत्वों को- भावप्रवणता, युक्ति, लक्ष्य एवं कर्मेषणा को ठीक से कैसे काम में लगाओगे ? इस प्रश्न के उत्तर में कहूँगा- प्रमासंवृद्धि, प्रमाऋद्धि और प्रमासिद्धि के पथ में चलने से इन चारों तत्वों को काम में लगा सकेंगे ।

मानस आभोग का मानसाध्यात्मिक आभोग में रूपान्तरण

मनुष्य की सहजात प्रवृत्ति अथवा स्यूल मानस-वृत्ति मनुष्य को सीमाहीन रूप से जागतिक वस्तु का संचय और भोग करने के लिए प्रभावित करती है। जड़वस्तु को संचय करने की मानसिक भूख प्रत्येक जैव सत्ता में है, किन्तु मनुष्य के अन्दर यह भूख अनन्त और तृप्तिहीन भाव से है। यह विभिन्न मानसिक भूखसमूह, वस्तुकेन्द्रिक मानसिक-आभोग (Psychic Pabula) छोड़कर और कुछ नहीं है।

सूचीपत्र

मानसिक आभोग और पूंजीवाद :

जड़वस्तु के पाने की सीमाहीन एषणा के ही पूंजीवाद को जन्म दिया है। जमीन-जायदाद, रुपया-पैसा, धातुवाली बधातुवाली क्रय-विक्रय की सामग्रियों, ये सब जड़-जागतिक धन-सम्पत्तियों के आहरण के मनस्तत्व ही पू'जीवाद का प्रधान कारण है। पूंजीवाद में इस प्रकार की स्थूल-मानसिक क्षुधा तथा मानसिक आभोग आ ही जाता है, इससे मनुष्य को अर्थनैतिक क्षेत्र में एक भूखे लोभी जीव के रूप में परिणत कर देता है। फलस्वरूप व्यवसायी और उद्योगपति येन केन प्रकारेण अधिक से अधिकतम भौतिक सम्पदा संचय करने के, मानसिक रोग से ग्रस्त हो जाता है। यहाँ तक कि साधारण मनुष्य को जीवन की न्यूनतम आवश्यकता की चीजों से वंचित

करने में, तनिक भी हिचकते नहीं हैं। ये व्यवसायी और उद्योगपति आर्थिक लाभके लिए मानसिक भूख अथवा अतृप्त मानस-आभोग से प्रभावित होकर, पागल कुत्ते के समान दौडता है और दूसरों का निर्मम होकर शोषण करने में द्विधा बोध नहीं करते हैं। अर्थनैतिक क्षेत्र में मनुष्य जहाँ भो आरिग्रह (जोवन रक्षा के हेतु प्रयोजनीय चींजो को छोड़ अतिरिक्त जागतिक भोग्य द्रव्य का परित्याग) नीति का उलङ्घन करता है, वहीं शोषण का सूत्रपात होता है। मनुष्य अस्तित्व रक्षा तथा प्रगति के लिए जितना प्रयोजनीय है, उससे भी अधिक संचा करता है। शोषक इस मौलिक सत्य को भूल जाता है कि जगत की भौतिक सम्पदा अत्यन्त सीमित है। मानसिक आभोग, एक अन्तहीन ऐषणा से परिचालित होता है। सीमित जागतिक सम्पद से ही असीमित मानसिक भूख को मिटाना च हता है. वहीं पर शोषण शुरु होता है।

फलस्वरूप मुट्टी भर मनुष्य पूंजीवादी बन जाता है और बाकी सब शोषित गरीब हो जाता है। इस अवस्था में लाख-लाख मनुष्य अनाहार ही मर जाता है, घर-विहीन हो जाता है, शिक्षा अभाव में मनोविकाश नहीं कर पाता है, बिना चिकित्सा के कष्ट पाता है और उपयुक्त वस्त्राभाव में जीवन-यापन करता है। समाज स्पष्टरूपेन दो भागों में विभक्त हो जाता है- धनी और निर्धन । प्रथम हैं पू ंजीवादी-शोषक और द्वितीय हैं शोषित गोष्ठी-विक्षुब्ध शुद्र । मनुष्य की भौतिक सम्पद संचय करने की वृत्ति, बेलगाम मानसिक भूख वा आभोग, एक स्वाभाविक प्रवणता है और निर्मम शोषण के द्वारा इसे परितृप्त करना चाहता है। इस अमानविक शोषण का ही परिणाम है कि कोटि-कोटि मनुष्य आज दरिद्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं। धनतन्त्रः का अभिशाप ही, समग्र मानवसमाज में व्यापक वञ्चना और जन-दारिद्रय ले

आता है। और इस वैश्य शोषण का सूत्रपात निहित है, जागतिक वस्तु सञ्चय की तृप्तिहीन क्षुधा में। शोषण की यह अनियन्त्रित अतृप्त मानसिक क्षुधा, मनुष्य के मौलिक मानविक मूल्य को, अस्वीकार करतो है और विभिन्न ध्वंसात्मक क्रियाकलाप के माध्यम से आत्मप्रकाश करती है।

यह अतृप्त मानसिक एषणा और आभोग ही, अन्त में पूजीवाद का कारण होता है। पूंजीवाद मानवताविरोधी है। पूंजीवाद में ही व्यापक रूप से बेकारी समस्या, नैतिक पतन, सांस्कृतिक विकृति, सामाजिक भेद-विभेद, अर्थनैतिक अस्थिरता, राजनैतिक उच्छ खलता, उपधर्मीय भावजड़ता (Religous Dogmas) और मानवता का हनन अत्यधिक होता है। समाज को इस वैश्य शोषण से छुटकारा देने के लिए पू'जीवाद को

समाप्त करना होगा। इसके लिए मानसाध्यात्मिक प्रक्रिया की सहायता से वेलगाम मानसिक एषणा और आभोग को नियन्त्रण में लाना होगा।

मानसिक-आभोग और कम्युनिज्म :

साम्यवाद (Communism) है जड़वाद के ऊपर आधारित एक सामाजिक, अर्थ नैतिक-राजनैतिक सिद्धान्त । साम्यवादी व्यवस्था में, मन की एषणा या मन का आभोग जड़सम्पद के आहरण तथा स्थूल जड़भोग की ओर दौड़ता है। जव मानसिक आभोग इस तरह जड़वादी भावधारा से परिचालित होता है, स्वभावगत रूप से उसके भीतर अमानवोचित ऋणात्मक (Negative) आचरण की वृत्ति पैदा होतो है जिससे उसको

जीवन-गति बहिर्मुखी हो जाती है। जागतिक सम्पद के प्रति आसक्ति प्रबल हो उठती है। अन्य के, चिन्तन या मतवाद के प्रति उग्र-असहिष्णुता उत्पन्न होती है। विरोधी पक्ष का दमन करने के लिए पाशविक शक्ति का प्रयोग करते हैं और आध्यात्मिकता को अस्वीकार करते हैं। तथाकथित साम्यवादी समाज में उपरोक्त सभी अवगुण पूर्णरूप से दिखाई पड़ती है। चाहे जो हो साम्यवादी समाज में आध्यात्मिकता का कोई स्थान नहीं है। मन आध्यात्मिकता को अपना मानस आभोग न मान, अर्थ जड़-वस्तु की ओर दौड़ता है। तब अर्थ, विषय-सम्पद, क्षमता और भोगलिप्सा ही मनुष्य के जीवन में सारवस्तु बन जाते हैं। फरस्वरूप मानसिक आभोग तत्र जागतिक सुख भोग की ओर दौड़ पड़ता है। समाधान के नाम पर, साम्यवादी देश में शासक निर्मम भाव से पाशविक शक्ति के प्रयोग से, मनुष्य की

जागतिक भूख का दमन करता है, जो अत्यन्त त्रुटिपूर्ण और युक्तिहीन है। इस अवस्था में जड़वादी साम्यवाद सोचनीय रूप से त्रिविध बन्धन में बंध जाता है। प्रथम है- समान वण्टन का त्रुटिपूर्ण आदर्श द्वितीय है बेलगाम मानसिक आभोग से पैदा हुई- अप्रतिरोध्य जड़ाभिमुखी प्रबल प्रवणता । और तृतीय है उस अप्रतिरोध्य जड़ाभिमुखी प्रवणता को अवदमित करने के लिये, एकछत्र कम्युनिष्ठ राष्ट्र के पास एक अक्षम प्रयास बलवत् रहता है।

किन्तु मानसिक एषणा और आभोग को पशुशक्ति के प्रयोग से कभी भी लौह पर्दा के अन्तराल में दमन कर रख नहीं सकते। मनुष्य का मन, समस्त वृत्ति की सहायता से एक प्रचण्ड इच्छाशक्ति उत्पन्न करता है और जिसकी अवाध अभिव्यक्ति तथा

अभिप्रकाश के लिए अनुकूल परिवेश अति नावश्यक है। वर्तमान साम्यवादी शासन व्यवस्था में विभिन्न मानसिक आभोग के इस प्रबल प्रवणता का अवैज्ञानिक एवं अमनस्तात्विक तरीके से दमन हो रहा है। मनुष्य को नियन्त्रण में रखने के लिए साम्यवादी राष्ट्र में कष्टमूलक बिधि-व्यवस्था, सामाजिक वॉयकाट, बहिष्करण अनिश्चित काल तक अन्तरीण रखना, सामाजिक दण्ड, सामाजिक अर्थनैतिक और राजनैतिक अधिकार से वञ्चित रखना इत्यादि अनेक उपायों का सहारा लेते हैं।

इस प्रकार की त्रुटिपूर्ण समाज व्यवस्था में, मनुष्य जीवन की गतिधारा को खो बैठते हैं; उसकी कल्पनाशक्ति नष्ट हो जाती है और कर्मेषणा दुर्बल हो जाती है। इस तरह जड़-साम्यवादी समाज, एक

विशृङ्खलता की अवस्था में पड़ जाता है; और साम्यवाद के पतन को त्वरान्वित करता है। यही विश्वङ्खलावस्था (Doldrum) समाज को चरम अराजकता (Pendemonium) की ओर ढकेल देता है और दानव के राजत्व में परिणत कर देता है। इस प्रकार आज साम्यवादी समाजव्यवस्था एक अवश्यम्भावी वेदनादायक परिणति की ओर बढ़ रही है।

साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों ही त्रुटिपूर्ण :

साम्यवाद और पूंजीवाद दोनों ही मानवता-विरोधी है। दोनों व्यवस्था में, मानसिक एषणा और आभोग ठीक तरह से परिचालित नहींहोने के कारण से शारीरिक, शारीरिक-मानसिक तथा मानसाभ्यान्तरीण क्षेत्र में

पाशविक कर्मों में लिप्त रह जाता है और जो मन की ऋणात्मक प्रतिसंचराभिमुखी गति का कारण हो जाता है। पूंजीवादी देश में एक तरफ पूंजीपति धन की अधिकता के कारण मानसिक भूख को परितृप्त करने में लग जाते हैं और मानसिक आभोग को स्थूल-भोग की ओर ले चलते हैं। दूसरी तरफ गरीब अपनी दरिद्रता में मानस-एषणा के भ्रांत पथ पर चलता है और बचने के लिए असामाजिक क्रियाकलाप में फंस जाता है। साम्यवादी समाज-व्यवस्था में प्रभावशाली सुविधाभोगी दल नेता मानसिक प्रवृत्ति को भ्रांत-पथ पर परिचालित करते हैं। सिर्फ इतना ही नहीं, वे राजनैतिक उद्देश्यों की पूति तथा सामग्रिक शोषण के लिए अपनी मानसिक आवेग को पूरा लगा देते है। साम्यवादी प्रशासन में साधारण मनुष्य के मानसिक आभोग का निर्मम दमन होन से एक विश्शृखलता पैदा होती है। दोनों व्यवस्था में

मानसिक आभांग, भौतिक, भौत-मानसिक, और मानसिक जगत के ही कार्यकलाप में व्यस्त रहते है। इसका प्रतिरोध करना होगा। किन्तु किस तरह इस अवक्षय का प्रतिरोध करना सम्भव है ?

मानस आभोग का मानसाध्यात्मिक आभोग में रूपान्तरण हो एकमात्र रास्ता है। आभोग क्या है? मनुष्य जिस चीज को विषयरूप में ग्रहण करता है उसे आभोग कहते है। साम्यवाद और पूंजीवाद मूलतः जड़वादी दर्शन हैं। दोनों हो जागतिक आसक्ति की मानसिकता को बढ़ावा देता है। जिस कारण से मनुष्य अन्धे की तरह अर्थ, नाम, यश, क्षमता, प्रतिष्ठा और प्रभाव के प्रति पागल कुत्तों की भाँति दौड़ता है। यह जो जागतिक आसक्ति है, बह एक विरामहीन मानसिक आकृति की अवश्यम्भावी परिणति है, जो वहिर्मुखी मनु

य को एक वस्तु से दूसरी वस्तु की और दौड़ाते ले जाती है। इस प्रकार से जागतिक एषण। के पीछे मनुष्य दौड़ते दोड़ते मन के चित्त-भूसि को अनवरत विषय-भूतरूप बनाकर रखता है, इसी मानसिक विषयसमूह (Objects) को मानस आभोग कहते हैं।

दैहिक मानस दैहिक और मानसिक प्रतिकर्म में नियुक्त होने के समय, मन आभोग के तरफ दौड़ता जाता है। दृष्टिकोण और लक्ष्य परिवर्तन होने से, मन का विषय और आभोग में परिवर्तन हो जाता है। इसकी संख्या बहुत है; सर्वदा आकर्षणकारी तथा पथभ्रष्टकारी विभिन्न मानसाभोग के द्वारा प्रेरित होकर, मन असंख्य परिस्थिति के पिञ्जर में आबद्ध हो जाता है। ऐसी अवस्था में मानव मन, वाहमुखी जड़वादी एवं दुर्बल हो जाता है। तब मन अशान्त, अस्थिर और भोगवादी होकर

आत्मसुख-तत्व का अनुगमन करना है। मन सवंदा आधिभौतिक, दैहिक जगत के साथ सम्पर्क रखकर चलता है ओर मनुष्य को प्रतिसंचर धारा में ले जाता है। तब वह संश्लेषणात्मक पथ को ही ग्रहण करता है।

अपनी अनन्त मानसाकृति के लिये मन ससीम जगत में विभिन्न मानसाभोग को तृप्ति के लिये चलमान होता है। किन्तु वह नहीं पाने से पारस्परिक स्वाथ के कारण परस्पर में भी, विभिन्न दल में संघात उत्पन्न कर देता है। अजस्र विषयी मन कुंठित हो उठता है, जिससे सामाजिक असमानता, अर्थनैतिक शोषण, राजनैतिक दमन, धर्मीय भ्रांति, सांस्कृतिक विकृति और सर्वाङ्गीण सामाजिक एवं वैयष्टिक अधोगति का जन्म होता है। धन

मानसिक वेग को विषयीमुखी बनाना ठीक नहीं है और दमन करना और भी ठीक नहीं है। ययार्थ मानसाध्यात्मिक साधना द्वारा उसको चरम लक्ष्य को ओर ले चलना हो ठीक होगा। परमसत्ता सर्वदा एक है, वहाँ द्वत भाव का कोई स्थान नहीं है। मानसाध्यात्मिक साधना द्वारा मन अपनी सहस्रवृत्तियों को एक परम विन्दु की ओर केन्द्रित करता है। सीधीवात यह है, कि मानसाध्यात्मिक उन्नति की उच्चावस्था से, मन की एषणा तथा मन के सभी आभोग, चल पड़ते हैं- एक मानसाध्यात्मिक आभोग को ओर, और अन्त में वह एक भूमा चैतण्य में मिल जाता है।

आभ्यान्तरीण प्रवाह तथा मानसात्मिक आभोग, जव एक विन्दुमुखी रूपान्तरण धारण करता है, जो वैयष्टिक जीवन एवं सामाजिक सरचना में एक साविक

परिवत्तं'न संघटित होता है, मनुष्यको, गम्भीर रूप से, अन्तर्मुखी, अध्यात्मवादी और आत्मलीन, बना देता है।

वस्तुजगत और पारमार्थिक जगत में सन्तुलन होने से मनुष्य शान्त और संयमी होता है और जड़भोग के प्रति निरासक्त जीव के रूप में परिणत होता है। मात्र यही नहीं, वह कठोर नीतिवादी विप्लवी, किन्तु भक्त, कर्म-च चल, किन्तु आत्मसंयमी ऐतिह्य-वाहक, किन्तु प्रगतिशील होता है। और सम-समाज तत्व के सिद्धान्तों का कठोर रूप से पालन करनेवाला होता है। इस अवस्था में मनुष्य शारीरिक, मानसिक-शारीरिक और मानसिक कर्मभूमि में भूमा-भाव आरोपकर सश्लेषण - विश्लेषणात्मक प्रक्रिया द्वारा बुद्धि और बोधि ज्ञान को जाग्रत कर लेता है। समष्टि जगत में अधिक सामाजिक, बन्धुत्वपूर्ण, सहायक, उदार होकर व्यष्टिगत

और दलगत विवाद का समाधान करता है। सामाजिक समता, अर्थनैतिक सुरक्षा, राजनैतिक स्थायित्व, सांस्कृतिक नबजागरण और सर्व मानवमुक्ति के ऊपर आधारित समाज को पूंजीवाद के दासत्व और साम्यवाद के अव-दमन से मुक्त कर नव्यमानवतावाद की गौरव में प्रतिष्ठित करता है।

इस तरह मानसिक आभोग को मानसाध्यात्मिक आभोग में रूपान्तरण के फलस्वरूप मन भूमा चैतन्य में प्रतिष्ठित हो जायेगा। तब प्रत्येक व्यष्टि सदविप्र हो जायेगा । और समस्त समाज हो जायेगा एक सदविप्र-समाज-आनन्द परिवार इसलिये कहा गया है- मानस आभोग को मानसाध्यात्मिक आभौग में रूपान्तरण करना ही एकमात्र मकरध्वज है।

सूचीपत्र

(कलिकाता, अक्टूबर, १९८६)

अर्थ को चलायमान रखो

अर्थ का मूल्य बढ़ जाता है, यदि उसको चलायमान रखा जाय । अर्थात् रुपया जितने अधिक हाथों में घूमता है उसका मूल्य उतना ही बढ़ जाती है। अर्थ को सन्दूक में रखने से उसमें जंग लगता है और उसके मूल्य में कमी आ जाती है। यही है अर्थनीति का मौलिक सिद्धान्त ।

जनकल्याण एवं आर्थिक उन्नति के लिए बैंक का होना अर्थ ब्यवस्था एक अनिवार्य अंग है। keep the

wagons moving means. Keep coins (money) moving धन को घुमने दो यह सिद्धान्त अच्छा है। बैंकिंग में दो बातों पर विशेष ध्यान रखना होगा। प्रथम कि बैंकिंग व्यवस्था की राक्षसी क्षुधा के कारण साधारण मनुष्य का जीवन, बैंक से सम्बन्ध रखने के कारण विपर्यस्त न हो जाय। पृथ्वी के अधिकांश देश में एक समय जो हुआ था, और आज भी कुछ कुछ सिर्फ अनुन्नत देश में ही नहीं, उन्नतशील तथा उन्नत देशों में भी होता है।

बैंकिंग व्यवस्था की दूसरी त्रुटि होती है अविवेकी राष्ट्र परिचालक लोग, या राष्ट्र-परिचालन व्यवस्था, अनेक समय राजकोष में या बैंक में उपयुक्त मूल्य का वित्तकोष (Bullion) न रख कर, स्वेच्छापूर्वक नोट छापते हैं। प्रथम त्रुटि से केवल दरिद्र और मध्यम वर्ग के लोग ही बर्बाद नहीं होते हैं, वरन् जो धनी परिवार के हैं,

उनपर भी प्रभाव पड़ता है। द्वितीय त्रुटि यह होती है कि समग्र परिमाण में वित्तकोष जमा नहीं रखने से, सम्पूर्ण समाज जीवन ध्वस्त-विध्वस्त हो जाता है। व्यापक रूप में मुद्रा स्फीति देखी जाती है। जो अभ्यन्तरीण वाणिज्य व्यवस्था और वैदेशिक वाणिज्य के आदान-प्रदान, दोनों को विपन्नकर देता है । देश में उत्पादन प्रर्याप्त होने पर भी साधारण मनुष्य को लाभ नहीं मिलता है उससे घनी और स्फीतोदर होता है, और निर्मम रूप से उसको शोषणयन्त्र चलाने का सुयोग मिल जाता है। राष्ट्रीय धनतान्त्रिक व्यवस्था में (State capitalism) जनसाधारण के ऊपर, राष्ट्रशासक शोषक की भूमिका में और दृढ़ रूप से अचल भारी पत्थर को तरह, छाती पर चर्चापकर बैठता है। यह राष्ट्रीय पूँजीवाद, (State capitalisn) स्वयं को पूंजीवाद, (Capitalism) समाजवाद, (Socialism) या साम्यवाद (Communism) कुछ

भी क्यों न कहे, जनसाधारण के निकट वह राक्षस, पिशाच से भी अधिक भय नक और रक्त-शोषक है।

बैंकिग और व्याज व्यवस्था (Interest system) के न रहने पर अर्थ कुसीद* व्यवस्था या कौसीद तो

* सूद पर कर्ज; व्यज पर ऋण

रखनी ही पड़ेगी। नहीं तो अर्थ की चलमानता बिगड़ जायगी। व्यष्टिगत भावना या अन्य किसी भावना से प्रेषित हो कर यदि कौसीद या कुसीद व्यवस्था की विरोधिता की जायेगी तो उसे आर्थिक दृष्टिकोण से अन्धकार युग में ही रह जाना पड़ेगा । भौतिक लोक में (physical sphere) वह अपनी प्रमा को खो बैठेगा और एक-तरफा या असंतुलित (lopsided) रह कर मानसिक

और आध्यात्मिक जगत में भी दूसरे के सामने उपहास का पात्त्र बन जायेगा। ऐसी अवस्था किसी की हो, ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता। इस तरह से समझ में आया न कि कौसीद या कुसीद व्यवस्था की मुख्य बात है कि धनं को घूमने दो । राष्ट्रव्यवस्था को सचल होने दो। चावल, दाल, नमक, तेल, सब रुपया द्वारा खरीदो..... जितना सम्भव हो सके खरीदो। रुपया मोदी की दूकान में जाय (राढ़ी भाषा में लटकेना की दूकान में)। वहाँ से ईख के गुड़ की घानी में... वहाँ से मिठाई की दूकान में वहाँ से कारखानों में जाय वहाँ से मजदूर के हाथ में जाय, वहाँ से हाट-बाजार में साड़ी-बेचनेवाले ताँती के पास । ताँती के पास से वह नववधू की रंगीन साड़ी में जाय... रंगीन साड़ी समाज में एक सुन्दरता लाए ।

("शब्द चयनिका" दशम खण्ड)

सूचीपत्र

किसी सूत्र से ऋण ले कर यदि किसी व्यवसाय का आरम्भ किया जाय या कुछ निर्माण किया जाय तब उस व्यवसाय या उस निर्मित सत्ता या संस्था को 'कालिका' कहा जाता है। जैसे किसी के पास रूपया पैसा नहीं है- ऋण ले कर उसने व्यवसाय शुरु किया, उसे "कालिका व्यवसाय" कहा जायगा ।

किसी देश में अर्थाभाव है। अन्य किसी देश से ऋण ले कर उस देश में नदी पर बाँध बनाया गया तो उसे "कालिका बाँध" या कालिका नदी परिकल्पना कहा जायगा । अर्थनीति यही शिक्षा देती है कि कालिका का गतिरोध कभी नहीं करनी चाहिए अर्थात कोई व्यवसायी ऋण ले कर उस रुपए को दूकान के लिए कमरा बनाने के काम में या शो-केस बनाने के काम में व्यवहार में

लाता है तो उस से धन बढ़ता नहीं। इस ऋण से वह पण्य-सम्भार को बढ़ाए। जिससे कोई उपयुक्त फल नहीं मिले ऐसे काम में कालिका का व्यवहार उचित नहीं । विदेशी धन से रेल स्टेशन निर्माण न कर के नई रेल लाइन को लाने के उपयोग में लाना चाहिए ।

(२० श मार्च, १६८६ कलकत्ता,

'शब्दचयनिका', चतुर्थ खण्ड)

सुसमञ्जस अर्थनीति

सूचीपत्र

वे समस्त जनपद जो एक काल में समृद्धि के उच्च शिखर पर आरुढ़ थे, परवर्ती काल में वे ही कई कारणों से श्री व सम्पदहीन हो गये । वे अर्थनीति का भारसाम्य खो बैठते हैं। इसके पीछे कई कारण होते हैं। पहला कारण होता है कि नदी के तीर पर जो जनपद बस जाता है, वह उस नदी के हटने और नदी का सूख जाना; और दूसरा कारण है ग्राम्य-जीवन से शिल्पों का मर जाना; तीसरा कारण है शिक्षागत त्रुटि ग्राम्यजीवन शिक्षागत त्रुटि, के फलस्वरूप त्रुटिपूर्ण समाज व्यवस्था के कारण, अर्थनैतिक सन्तुलन नष्ट हो जाता है। साधारणतः किसी अंचल में बलिष्ठ अर्थनीति को बनाने के लिए, उस अंचल की जन संख्या में से ३०% से ४०% प्रतिशत लोगों को कृषि पर निर्भर रखा जा सकता है, उससे कम या अधिक नहीं कम होने पर कृषि उपेक्षित हो जाती है, ज्यादा होने पर कृषि पर बहुत

अधिक दबाव पड़ता है। राढ़ अंचल में ऐसा ही हुआ था । केवल राढ़ ही के बारे में क्यों कहा जाय पूरे बंगाल, पूरे भारत में, यहाँ तक कि चीन और पूरे दक्षिण-पूर्व एशिया में भी उस तरह की घटना घटी है। इसके प्रतिविधान के लिए आज नवतर सामाजिक अर्थनैतिक मूल्यायन का प्रयोजन है।

कृषि को उन्नत वैज्ञानिक भित्ति पर प्रतिष्ठित करना होगा, उसी तरह शिल्प को भी कृषि के साथ सामंजस्यपूर्ण बनाना होगा। कृषिनिर्भर मनुष्यों को ४० प्रतिशत से अधिक बढ़ने नहीं देना चाहिए। ग्रामीण शिल्पों के नष्ट होने पर सब शिल्पकार कृषि की ओर बढ़ते हैं। और स्वस्थ अर्थनैतिक परिवेश के लिए ३०% और ४०% प्रतिशत तक कृषि जीवियों का रहना जरूरी है उसी प्रकार जनसंख्या की २०% प्रतिशत संख्या

कृषिनिर्भर शिल्प पर निर्भरशील होनी चाहिए । १०% प्रतिशत को साधारण व्यवसाय और १०% प्रतिशत बुद्धिजीवी या चाकरीजीवी होने चाहिए। ग्रामीण शिल्प के ध्वंस होने पर उन सब शिल्पों पर निर्भरशील परिवारों की सन्तान कृषि की ओर अग्रसर हुई है। व्यवसायियों की संख्या उस परिमाण में बढ़ी नहीं। बल्कि बढ़ने का सुयोग कम होता जा रहा है। पर नौकरीपेशा बुद्धि जीवियों की संख्या बढ़ गई है। इसके फलस्वरूप बेकारों की संख्या बढ़ गई है।

कृषक का बेटा दो-चार किताबें पढ़ने के बाद खेती करना नहीं चाहता है। वह बाबू बनना चाहता है। खेती के काम काज को वह छोटा काम समझने लगता है। इस के फलस्वरूप खेती के लिए जैसे शिक्षित लड़कों का अभाव है वैसे ही बुद्धिजीवी भी खेतीबारी की और

उन्मुख हुए हैं। ग्रामांचल में कृषि जीवियों की संख्या ७०% से ८०% तक है। कितनी भयावह दशा है।

अकृषि-शिल्प (जैसे स्टील प्लांट, वर्तन-शिल्प, धातु-शिल्प, तैल शोधनागार, लवण शिल्प, अनुद्भिज औषधि के कारखाने) उसे कहा जा सकता है जो शिल्प कृषि सहायक है, जैसे कुदाल, खुरपी, ट्रॅक्टर, आदि नहीं हैं और कृषि व्यापार पर निर्भरशील भी (जैसे पाट का कारखाना, कपड़े का कारखाना, तेल का कारखाना, मैदा का कारखाना, कागज का कारखाना, उद्भिज. औषधि का कारखाना आदि) नहीं है। इन अकृषि शिल्पों में नियुक्त मनुष्यों का प्रतिशत कृषि पर नियुक्त मनुष्यों की संख्या से कुछ कम कर के कृषि सहायक शिल्प में नियुक्त मनुष्यों की संख्या कुछ कम कर के, इन अकृषि-शिल्प में नियुक्त मनुष्यों की संख्या जनसमष्टि

के २०% से ३०% शतांश के मध्य रखना होगा । २०% से कम होने पर उसे शिल्पावनत देश कहा जायगा। वहाँ के मनुष्यों में हर मनुष्य की आय कभी भी बढ़ नहीं सकती। जीवन-यात्रा का मान भी किसी प्रकार बहुत ज्यादा उन्नत नहीं हो सकता। क्योंकि उनकी क्रय-क्षमता. बहुत कम होती है। भोगपण्य की क्रय-क्षमता कम रहने के कारण उनकी आमदनी का मूल्यांक बेचने के मूल्यांक से हर हालत में कम रह ही जाती है या किसी दूसरे इलाके का उपग्रह बने रहना पड़ता है। जिसके फलस्वरूप विश्व में उसका शक्ति साम्य नष्ट हो जाता है। युद्ध की सम्भावना हर समय सिर उठाती रहती है। अकृषि-शिल्प में नियुक्त मनुष्यों की संख्या २०% से ३०% में रहने से ही एक सन्तुलित अवस्था बनी रहती है सन्तुलित सामाजिक अर्थनैतिक संरचना बनी (balanced socio-economic structure रहती है।

प्रतिशतता ३०% से अधिक रहने पर वह इलाका अति शिल्पोन्नत होता जायगा । अति-शिल्पोन्नत देश कृषिज पण्यों के लिए कृषिप्रधान इलाका या इलाकों को अपने ही उपग्रह के रूप में पाने की चेष्टा करेगा । तैयार माल की बिक्री के लिए वे शिल्पावनत देशों को अपनी मुट्ठी में रखने की जरूरत अनुभव करेगा। अपने शिल्पजात भोग्यपण्य का बाजर न पाने पर उसे अर्थनैतिक मन्दी को भोगना पड़ता है- क्रमवद्ध मान वेकारी की जलन में मरना पड़ता है।

इस व्यापार में कम्युनिष्ट का अकम्युनिष्ट का विचार नहीं है। सब ही समान आग्रासी हैं- सभी समान मात्ना में खड़-पुआल भूसा, आदि का व्यवहार कर के घर के द्वार पर रस्सी से बाँध कर रखने के लिए कामधेनु की खोज में पागल हो कर घूमते रहते हैं। इसी

कारण ही तो विश्व में इतने युद्ध होते हैं। इसी कारण ही तो रणोन्माद की रणभेरी बजती है, तभी न रणभेरी का इतना पैतरा हो रहा है।

अतिरिक्त रूप से शिल्पोन्नत होने के कारण आभ्यन्तरीण कुफल यह होता है कि इस से व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय स्वास्थ्य तो नष्ट होता ही है, व्यष्टि और समष्टि का क्रम से मानसिक अवक्षय होता रहता है, जिसके कारण एक प्रकार की मानसिक महामारी कभी न कभी आ जायगी, जो जीवन की हर अभिव्यक्ति को विषाक्त कर के ध्वस्त विध्वस्त कर देगी आज न हो, पर निकट भविष्य में तो होगा ही ।

जहाँ पर शिल्प व्यवस्था (चाहे वह कृषिज हो, कृषि सहायक या अकृषि की हो) बाहरी श्रमिकों पर निर्भरशील है, वहाँ की अवस्था तो और भी अधिक शोचनीय होती है। वहाँ मानसिक अवक्षय की गति द्रुततर होगी। उसे खाद्याभाव प्रायः स्थायी तौर पर भोगना पड़ेगा। उसके भोग्यपण्य की सामग्री को सम्प्रासरित करने की सम्भावना भी क्रमशः संकुचित हो जायगी । दृष्टान्त के तौर पर हमारे हावड़ा, हुगली, चौबीस परगना, वद्धमान के बारे में कहा जा सकता है। यहाँ श्रमजीवी बाहर से आए हुए है। इस कारण स्थानीय मनुष्य कभी भी सुख के दिनों का दर्शन न कर पायेंगे । यहाँ जो इलाका जितना शिल्पोन्नत हैं, और वह अतिशिल्पोन्नत हो रहे है पर अतिशिल्शोन्नत होने का कुफल भोग रहा है, सुफल का एक कण भी उन्हें नहीं मिल पायेगा। हमारे हावड़ा जिले का यह दूश्य हम दोनों

समय देखते हैं। इस तरह पूरे भारत में ही ऐसे अनेक इलाके हैं जहाँ ६०% लोग कृषिजीवी है। शिल्प तो वहाँ मानो है ही नहीं-सम्पूर्ण तौर से अभिवृद्ध-श्रमिक (surplus-labour area) का इलाका है। एक सन्तुलित सामाजिक-अर्थनैतिक संरचना में अभिवृद्ध-श्रमिक (surplus labour) या कम श्रमिक (deficit labour) कोई कुछ नहीं होगा..... या होने नहीं दिया जायगा ।

कृषि व्यवस्था की संरचना में भी कुछ शिल्प व्यवस्था के धरण-धारण को बनाए रखना होगा अर्थात कृषि पण्य का दाम कृषि-गत आय-व्यय और प्रयोजन की अवस्था पर निर्धारित किया जायगा। अर्थात् वद्ध मान और वीरभूम के कृषकों को पानी के मूल्य पर धान न बेचना हुगली के किसानों को सस्ते दामों में आलू न

बेचना पड़े। नदिया के किसानों को ऋण चुकाने के लिए पानी के दामों अपना पाट (जूट) न बेचना पड़े। पड़े,

("प्रभात रंजन सरकार का गल्प सञ्चयन" ५म खण्ड)

तुम यह जानते हो एक सामंजस्यपूर्ण अर्थनीति में कृषि, शिल्प और वाणिज्य की एक सुसन्तुलित अवस्था बनी रहनी जरुरी है। जैसे जन साधारण की एक सुनिश्चित शतांश कृषि में नियुक्त होना जरूरी है और दूसरा एक अंश उद्योग और वाणिज्य - में । अन्यथा जीवन के सामाजिक और अर्थनैतिक क्षेत्र का सन्तुलन (equi-librium) और भावसार (equipoise) बना नहीं रहेगा। पर दुर्भाग्यवश पृथ्वी के किसी भी देश में ऐसी व्यवस्था नहीं है। यहाँ तक कि ग्रेटब्रिटेन की तरह शिल्पोन्नत

देशों में भी ऐसी सुसंतुलित अवस्था परिलक्षित नहीं होती । एक ग्रेटब्रिटेन में मात्र इंलैण्ड ही आगे बढ़ा हुआ है, किन्तु स्कौटलैंड पिछड़ा है। पर इंग्लेड का कोई इलाका बहुत उन्नत है और कोई ईलाका अनुन्नत है। उदाहरण के तौर पर कहा जा सकता है कि लंकाशायर बहुत शिल्पोन्नत है और यार्कशायर अपेक्षाकृत कम उन्नत है। ससेक्स, एसेक्स और केन्ट समान तौर पर उन्नत हैं।

हमारे बंगाल के बारे में ही कहा जाय। यहाँ के कुछ जिले अर्थनैतिक तौर पर बहुत उन्नत हैं और कुछ जिले तुलनामूलक तौर से कम उन्नत हैं। अर्थनैतिक संरचना में उपयुक्त व्यवस्था नहीं रहने पर ही यह स्थिति उन्नत होती है। मनुष्य इसी कारण से ही कष्ट भोगता रहता है। उदाहरण के तौर पर कह सकते हैं,

कलिकाता, हुगली, हावड़ा, वर्धमान और चौबीस परगना, शिल्प में यथेष्ट उन्नत है, उस तुलना में प्रतिवेशो मिदनापुर, बाँकुड़ा वीरभूम और मुर्शिदाबाद, जिले बहुत पीछे है। इस कारण तुम संब सारे देश में एक शिल्पविप्लव करने की अवश्य चेष्टा करो। जैसे फ्रांस की क्रान्ति हुई थी, उसी तरह शिल्प विप्लव होना जरूरी है।

इस शिल्प-विप्लव के लिए हमें विदेशी कच्चे माल पर निर्भर नहीं करना होगा। तुम्हें यह याद रखना है कि किसी देश से कच्चे माल की आमदनी कर के किसी देश के शिल्प को नहीं बढ़ाया जा सकता। इस के लिए हमें देशीय कच्चे माल की ठीक प्रकार से व्यवस्था करनी होगी ।

जो समाज व देश के लोगों से प्यार करते हैं और देश का सामाजिक व अर्थनैतिक उन्नयन चाहते हैं, वे अवश्य ही अपने शिल्प इलाकों में उत्पन्न कच्चे माल पर निर्भर कर के शिल्प-विप्लव के बारे में सोचेंगे ।

कूचविहार, जलपाइगुड़ि, दार्जिलिंग और पश्चिमी दिनाजपुर - उत्तर वंग के ये जिले शिल्प के उन्नयन में कच्चे माल द्वारा सहायता कर सकते हैं। अर्थनैतिक उन्नयन के लिए इस सहज लभ्य कच्चे माल को हमें पूरी तरह से काममें लगाना होगा। याद रखो तुम्हें इस तरह के विप्लव को शीघ्र बढ़ाना होगा सम्मिलित तौर पर तुम एक उन्नयन परिकल्पना की रचना कर के, विप्लव करने के लिए प्रयासी बनो । इस विषय में विलम्ब करना ठीक नहीं होगा ।

सूचीपत्र

मालदह का रेशम शिल्पी इतने उन्नत कोटि की वस्तुओं का निर्माण करते हैं, जिसकी प्रतिद्वन्द्विता चीन या जापान के रेशम से कर सकते हैं। इतनी शिल्प संभावना होने पर भी मालदह आज बंगाल का तृतीय दरिद्रतम जिला के रूप में माना जाता है। इसका उन्नयन मूलक कार्य शीघ्र होना जरुरी है और यह कोई कठिन कार्य नहीं है ।

बंगाल के किसी भी शिल्प को बाहरी कच्चे माल पर निर्भर नहीं होना चाहिए, देशी उपकरण पर निर्भरशील होना उचित है ।

(१७-६-८७, कलिकाता)

सूचीपत्र

अर्थनीति की चार धाराएँ

किसी की अर्थनीति को उन्नत (Developed economy) कह कर पुकारने में चार मुख्य धाराओं का होना जरूरी है - गण अर्थनीति (People's economy) मानस-अर्थनीति, (psycho-economy) वाणिज्यिक अर्थनीति, (Commercial economy) और साधारण अर्थनीति (General Eco-nomy) । अर्थनैतिक जगत् को केन्द्र बना कर समकालमें जितनी विचार धाराएँ बनी हैं, अर्थनीति की इन चार धाराओं ने उसकी परिधि को बहुत बढ़ा दिया है। आज के अधिकांश अर्थनीति-विद् साधारण अर्थनीति के विषय में बहुत कम समझते हैं, पर

सूचीपत्र

वाणिज्यिक अर्थनीति को उससे कुछ ज्यादा समझते हैं। परं मानस-अर्थनीति और गण-अर्थनीति के सम्बन्ध में वे पूर्णतः अनजान हैं। इस कारण उनकी वर्तमान-अर्थनैतिक ध्यान धारण में अर्थनीति की इन दो शाखाओं ने किसी प्रकार का स्थान नहीं पाया । अर्थनीति की इन चार मुख्य धाराओं को लेकर अब संक्षेप में आलोचना करूँगा ।

गण-अर्थनीति (People's Economy) - अर्थनीति की यह शाखा साधारण तौर पर मनुष्य को अत्यावश्यक आवश्यकताओ को ले कर आलोचना करेंगी जैसे उत्पादन, बन्टन, पनन, विपनन, व्यवस्था, स्टोरेज, मूल्य निर्धारण विक्रय व्यवस्था, महसूल (freight charges) प्रोफर्मा कास्टिंग और उससे जुड़ी अन्य बातें । सबसे महत्वपूर्ण है कि अर्थनीति की यह शाखा मनुष्य

की न्यूतम माँगों का विवेचन करते हुए, आलोचना करती है। जैसे खाद्य, वस्त्र, वासस्थान, चिकित्सा, शिक्षा, यातायात के लिए वाहनों की व्यवस्था, विद्युत शक्ति को हासिल करना, पानी के वितरण की व्यवस्था आदि। यह समस्त अत्यावश्यक वस्तुएँ सहज ही मिल पाएँ उसकी ओर ध्यान देना होगा, साथ ही इन वस्तुओं की उत्तरोत्तर उन्नति भी हो । अर्थनीति की यह शाखा इन्हीं बातों की ओर ध्यान देगी ।

मनुष्य की न्यूनतम आवश्यकता पूरा करने के लिए उस के संविधान में हर नागरिक की क्रय-क्षमता की निश्चितता लिखित होनी चाहिए। और इस क्रय-क्षमता को संविधान में एक मौलिक मानव अधिकार के रूप में स्वीकृति देनी होगी। यदि कोई नागारिक मन में यह सोचे कि उसकी न्यूनतम जरूरत को पूरा नहीं किया

जा रहा है, तब वह उस सरकार के विरुद्ध, अपने मौलिक अधिकार भंग करने का मामला दायर कर सकता है। इस कारण गण-अर्थनीति की उन्नति के पीछे सांविधानिक क्षमता भी काम करेगी ।

क्योंकि गण-अर्थनीति मनुष्य की न्यूनतम प्रयोजन तथा जनगण की जीवन-धारण की समस्या को दूर करने के लिए आलोचना करेगी, इसी कारण अर्थनीति की अन्यान्य शाखाओं से इस शाखा का महत्व अधिक है। उदाहरण के तौर पर कहा जा सकता है कि यदि किसी विशेष परिस्थिति में खाद्याभाव के कारण मनुष्य कष्ट पा रहा है, तो जो शिल्प-अर्थनैतिक विचार से लाभ-जनक नहीं माने जा रहे हैं, उन्हें खाद्य सामग्री उत्पादन और उसके वितरण के काम में लगाया जायगा । स्वाभाविक अवस्था में इस तरह के शिल्प प्रतिष्ठान

यदि खाद्योत्पादन करते हैं, तो वह साधारण अर्थनीति की मूल नीतियों तथा जरुरतों और उनकी वितरण के नियमों का उल्लंघन कर रहे हैं, ऐसा माना जायगा ।

गण-अर्थनीति की और भी एक विशेषता होगी- व्यक्तिगत और सहकारिता संस्था द्वारा परिचालित क्षुद्रशिल्पों का उन्नयन । व्यक्तिगत मालिकाने से परि-चालित शिल्प आकार और आयतन में सीमित होंगे। इसका उद्देश्य है एक व्यष्टि को अधिक लाभ तथा उत्पादन कर सुयोग न मिल पाए। और जैसे ही उनका आयतन बड़ा हो जाय, वैसे ही उसे सहकारिता के अन्तर्गत ले लिया जाय । सामवायिक संस्था परिचालित शिल्प, मनुष्य को स्वाधीन और सुसंगठित तौर पर कार्य करने का एक सर्वोत्तम पथ है। इस से सभी जीविका अर्जन का मिलाजुला दायित्व ग्रहण करेंगे ।

सूचीपत्र

गण-अर्थनीति के दायरे में हर तरह से सब को काम करने का मौका मिलपाएगा और सब ही दारिद्रय को दूर कर पाएँगे ग्रामीण अर्थनीति - जो सत्य रूप से उत्पादन के लिए अपनी शारीरिक और बौद्धिक शक्ति को लगाते हैं, उनके ही पास सारी जमीन रहे, उसके लिए सामाजिकीकरण उससे जुड़े शहर, और ग्रामीण इलाकों में मनुष्यों को काम मिल सके, उसके लिए भी उन्हें विशेष नैपुण्य शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होगी, कर्म का विभाजन, यातायात के साधन, द्रव्य सामग्री के लिए परिवहन व्यवस्था, लोडिंग अन-लोडिंग, की समस्या आदि । चाहे इन में से अनेक आर्थिक रूप से लाभजनक न माने जाँय, फिर भी वे अर्थनीति की इसी शाखा के आलोच्यविषय के रूप में गिने जाएँगे। गण-अर्थनीति का एक आलोच्य विषय है- शक्ति

(Power) और जल का बंटन; क्योंकि मनुष्य को अर्थनैतिक क्षेत्र में पूरी तरह स्वनिर्भर होने के लिए क्षुद्रायतन और सुलभ-शक्ति व जल के वितरण की व्यवस्था अति आवश्यक है। अन्त में यही कहूंगा कि गण-अर्थनीति को और भी कुछ महत्वपूर्ण विषय को ले कर आलोचना करना होगा, वे हैं अर्थनैतिक विकेन्द्रीकरण, गणशक्ति (Peoples power) समवाय की शक्ति का उत्स (Co-operative Dynamo) ब्लोक की भित्ति पर परि-कल्पना । उदाहरण के तौर पर बंगाल को ही लें। मनुष्य कीन् यूनतम जरूरत *से सम्बद्ध गण-अर्थनीति को कैसे बनाया जाय उसी का ह्रष्टान्त दे कर बंगाल की आलोचना की जा सकती है। पहले ही खाद्य प्रसंग की आलोचना की जाय । हमारे बंगाल की मिट्टी बड़ी उर्वर है। इसमें मुख्यतः दो अंश हैं। एक अंश में वर्षा बहुत कम होती है। और दूसरे अंश में वर्षा कम

नहीं पर शीत ऋतु में जल का अभाव हो जाता है। इस कारण दोनों अंचलों में जल के संचय की जरूरत है। सिंचाई की समस्या के समाधान के लिए चारं उपायों में से किसी एक उपाय का अवलम्बन किया जा सकता है (१) शिफ्ट इरिगेशन सिस्टम जैसे नहर (२) लिफ्ट इरिगेशन सिस्टम जैसे पम्प (३) टंक इरिगेशन सिस्टम (जैसे बड़े बड़े जलाधार) । (४) क्षुद्र नदी का प्रकल्प । विभिन्न नदियों के जल के गुण-अवगुण भिन्न भिन्न हैं। किसी नदी का पानी-मीठा है और किसी नदी का जल नमकीन है। इस कारण उपयुक्त क्षेत्र में निर्वाचित जल सिंचन के फल से कृषि के उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। यदि ठीक प्रकार से व्यवस्था की जाय तो बंगाल के निजी कृषि की सम्पदा से छः करोड़ मनुष्यों के भरणपोषण की व्यवस्था की जा सकेगी; क्योंकि

बंगाल की मिट्टी और आवोहवा नाना प्रकार की फसल, फल, साग-सब्जी की खेती के लिए अनुकूल है।

वस्त्र: किसी भी अंचल के मनुष्यों की पोशाक व पहरावा वहाँ की जल-वायु और कच्चे माल की उपलब्धि पर निर्भर करती है। हमारे बंगाल में मूलतः वस्त्र उत्पादन के लिए चार प्रकार के उपकरण मिलते है रूई, तूत-रेशम, (Mulberry silk), अ-तूत रेशम (Non-Mulberry silk) और संश्लिष्ट उपकरण (Synthetic materials)। रुई, रेशम और इसीतरह की वस्तुओं पर बंगाल स्वनिर्भर हो सकता है, ऐसी बात ही नहीं, बल्कि अन्य प्रदेशों में भी अधिक उत्पादित सामान को बाहर भेजने का सामर्थ्य भी रखता है। तूत-रेशम बंगाल के लिये बहुत उपयोगी है; क्योंकि तूत रेशम के व्यवहार के लिए सूखी जलवायु की जरुरत है, जो हमें बंगाल के पश्चिमी अंश में

मिलती है। अतूत-रेशम बंगाल में सब जगह पाई जाती है और नारियल का खोपरा (copra) खड़, बाँस, नारियल का छिलका, केला और अनारसके पत्तों से भी सिन्थेटिक फाइबर बनाया जा सकता है। बंगाल पशमीना भी मिल पाएगा। बंगाल के जूट का भी वस्त्र उत्पादन के उपकरण के रूप से व्यवहार में लाया जा सकता है।

वासस्थान :- बंगाल में हर जगह गृहनिर्माण के उपकरणों का बाहुल्य है। मकान बनाने के लिए मुख्यतः बालू, सिमेंट, और चूने की बहुत जरूरत पड़ती है। बंगाल की मिट्टी, इंट, झामा और टाली (खपड़े) के लिए बहुत उपयुक्त है। अभी अभी बंगाल के एक जिले में प्रचुर मात्रामें चूनापत्थर की खदान की खोज की गई है। बंगाल केवल गृहनिर्माण के उपकरणों की दृष्टि से स्वयंसम्पूर्ण है केवल यही नहीं, बल्कि भारत के अन्य

अंचलों को भी इन वस्तुओं को भेजने में समर्थ है। गृह निर्माण के उपकरणों का व्यवसाय करने से बहुत लाभान्वित हो सकेंगे ।

चिकित्सा : बंगाल की मिट्टी में अधिक परिमाण में औषधि के उपादान हैं। बंगाल का मुख्य रोग है ज्वर और पेटकी बीमारी। यह देखा जाता है कि प्रकृति की एक साधारण प्रवणता है कि जहाँ जो रोग है, वहाँ उस रोग को दूर करने के प्रयोजनीय भेषज उत्पादन की व्यवस्था है। बंगाल में कई जिलों की मिट्टियाँ भेषज उत्पादन के लिए बहुत उपयुक्त हैं। और कई जिलों में मिट्टी के नीचे खनिजों में ओषधि के उपकरणों की प्राप्ति की सम्भावना है।

शिक्षा :- मातृभाषा व्यक्ति की अभिव्यक्ति का स्वाभाविक माध्यम है। इस कारण बंगाल के स्कूलों में बंगला भाषा को ही शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए । आज कल अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकृत अंग्रेजी भाषा को भी द्वितीय भाषा के रूप पढ़ाना उचित है। बंगाल की सांस्कृतिक विशेषताओं की जानकारी के लिए संस्कृत का पठन-पाठन भी जरूरी है। शिक्षा के अन्यान्य उपकरण जैसे कागज, स्याही आदि बंगाल में सब जगह पाई जाती है। बंगाल के विभिन्न जिलों में विभिन्न प्रकार के घास और उद्भिज के द्वारा कागज का उत्पादन किया जा सकता हैं। नील या किसी संश्लेषात्मक उपकरण से स्याही बनाई जा सकती है।

शक्ति और परिवहन :- जितने दिनों तक सस्ते दामों में सौर शक्ति उत्पादन

सम्भव नहीं होगा, तब तक शक्ति के अन्यान्य उत्सों को काम में लगाना चाहिए । जैसे जलविद्युत, कोयला, ताप-विद्युत, तरंग शक्ति, भू-ताप-शक्ति, वायु-शक्ति और प्राकृतिक गैस । परिवहन के लिए प्रयोजनीय उपकरण भी बंगाल में सब जगह मिलते हैं। जैसे रबर, इस्पात, अभ्रक, पारा, चाँदी, ताम्बा, चूनापत्थर, मैंगनीज आदि । यदि बंगाल चाहे तो इन सब के उद्वत्त उपकरणों को बाहर भी भेज सकता है।

मानस अर्थनीति - हमने पहले ही कहा है जिस गण अर्थनीति का मुख्य आलोच्य विषय है, जीवन धारण की न्यूनतम प्रयोजनीय द्रव्यसामग्री और मानस-अर्थनीति का आलोच्य विषय है कि किस तरह से यया उपयुक्त अर्थ नैतिक क्रिया कलाप के द्वारा वैयष्टिक व

सामूहिक मन को अधिक से अधिकतर बाभोग (pabula) दिया जा सके। इस तरह गण अर्थनीति जहाँ पर रुन व अनुन्नत अर्थनैतिक यूनिटों को ले कर काम करता है और जहाँ मनुष्य के जीवन-धारण की समस्या का समाधान होता है, वहाँ मानस बर्थनीति का महत्व बढ़ेगा। जिन देशों में अति उन्नत और यान्त्रिकीकरण का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है, जहाँ मनुष्य सप्ताह में केवल कुछ एक घन्टे काम करेगा और उसके पास बहुत अवसर होगा, वहाँ मानस-अर्थनीति का महत्व अपरिसीम है।

मानस-अर्थनीति की मूलतः दो शाखाएँ होगी। एक शाखा की प्रचेष्टा आचरण और संरचना, होगी कि किस तरह से अर्थनैतिक क्रिया कलाप, आचार (structure) मनुष्य के समाज में शोषण और अविचार को चलाए जा

रहा है, इसको दूरीकरण करना । ये मानस-अर्थनीति हर तरह के बर्थनैतिक और मानस अर्थनैतिक शोषण को दबाकर मनुष्य को सचेतन करेगा कि किस तरह पूंजीपतिगण दूसरों का अकेले व मिलकर उनका शोषण करते है। वे लोग एक अस्वास्थ्यकर कृत्रिम माँग उपस्थित करते हैं, जिससे मनुष्य का मन ही विषाक्त हो जाता है, बल्कि ऐसे कुछ भयंकर कु-अभ्यासों को बढ़ावा देते हैं, जो मानसिक शुचिता और प्रसार के विरोधी हैं। मानस अर्थनीति का प्रथम और प्रधान कत्र्तव्य है-आज के समाज में जो क्षतिकारक मानवताविरोधी अर्थनैतिक प्रवणता चल रही है, उसके विरुद्ध विरामहीन संग्राम चलाना ।

मानस अर्थनीति की द्वितीय शाखा का काम होगा वैयष्टिक और सामूहिक मन के आभोग (pabula) की वृद्धि करना। आज के अर्थशास्त्री इस अर्थनैतिक शाखा से पूर्णतः अपरिचित हैं, पर अदूर भविष्य में यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शाखा कह कर गिनी जायगी। जब मनुष्य अपने जड़ जागतिक समस्याओं का समाधान कर लेगा, तब मानस अर्थनीति और भी अधिक भास्वर, और प्रोज्ज्वल हो उठेगी ।

सृष्टि में मनुष्य को मानसिक और आध्यात्मिक सम्पदा का उपयोग करने के लिए और सर्व प्रकार के अर्थनीति के सर्जनशील समाधान को ढूंड़ने ने में यह मानस अर्थनीति एक विशिष्ट भूमिका का पालन करती है।

सूचीपत्र

मानस-अर्थनीति में मुख्यतः जो विषय स्थान पाएँगे वे हैं- सुसन्तुलित अर्थ-नीति (balanced economy) उत्पादन का विषय निर्वाचन, आर्थिक व्यय का विवरण, कार्य की अनुकूल परिवेश सृष्टि, पूर्वाद्रनीति का प्रयोग सर्व प्रकार से कर्मसंस्थान की नीति, उत्पादन और वन्टन व्यवस्था में श्रमिक की भूमिका, नारी की अर्थनैतिक स्वाधीनता, उत्साह-प्रदान नीति (Incentive policy), क्रमवद्ध मान उत्पादन वृद्धि के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक दिशाएँ, अर्थनैतिक विकास के क्षेत्र में, मनोवैज्ञानिक और समाजतात्विक प्रभाव, उत्पादन वृद्धि और श्रमह्रास के क्षेत्र में, प्रयुक्ति विद्या का प्रयोग, जीवन के मानदण्ड का उन्नयन, व्यवसाय नीति, स्वस्थ सहकारी उद्योग की नीति नियम आदि । सक्षेप में कहा जा सकता है कि अर्थनैतिक जीवन को जो भी प्रत्यक्ष रूप से वैयष्टिक और सामूहिक जीवन के क्रम-वद्ध मान

उन्नति और विकास में प्रभावान्वित कर के, उस के समस्त मानस-अर्थनैतिक आलोचना के दायरे में रखा जायगा, उससे अदूर भविष्य में मानस अर्थनीति का महत्व बहुत बढ़ जायगा ।

समाज एक पूर्णांग जैवी सत्ता की तरह है, उस के एक एक अङ्ग की सत्ता-गत वैशिष्टय में से इसका निजी एक मौल वैशिष्टय भी है। बहु जीवकोषों के समन्वय से एक मानव देह के जीवकोषों का पृथक पृथक प्राणधर्म भी है, पर समग्र मानवधार का एक विशेष वैशिष्ट्य भी रहता है, समाज के क्षेत्र में भी ऐसा ही होता है।

मानव समाज एक अखण्ड गतिमय सत्ता है, जो अपने छन्द वं प्राण चाँचल्प से छन्दायित रहती हैं। वह अपने आभ्यन्तरीण सत्ताओं का मात्र यान्त्रिक समाहार नहीं है। सामूहिक मनोविज्ञान है, सामूहिक क्रिया कलाप की अनिहित चालिका शक्ति । मानव की अधिविद्या और अतिजागतिक सम्पदा के मध्य उसका उद्भावित भाव-भावना-मतवाद आदि आते हैं। जैसे हमारी यह मानस अर्थनीति है, जो मनुष्य को चिन्तन में और कार्यकलाप में प्रधावित करती है। भविष्य के नेता यह अच्छी तरह जान लेंगे कि सामूहिक मनस्तत्व क्या है और उसे कैसे परिचालित किया जा सकेगा, तो मानस-अर्थनीति विशेष तौर से महत्व की उपलब्धि कर पाएगी ।

वाणिज्यिक अर्थनीति- अर्थनीति की इस शाखा की आलोचना कैसे की जाए। वैज्ञानिक और उन्नत उत्पादन पद्धति के द्वारा आर्थिक क्षति को रोका जा सकता है और कम पूँजी लगाने से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। वाणिज्यिक अर्थनीति का मूल उद्य श्य होगा विश्व की विभिन्न सम्पदाओं का सर्वाधिक उपयोग और विवेक पूर्ण बन्टन को वास्तवायित करना। इसके अन्यान्य आलोच्य विषय होंगे-जैसे अर्थकरी फलसों का निर्वाचन, उत्णदन बन्टन, आंचलिक और अन्तरांचलिक नीति । आमदनी और निर्यात करना, सुन्दर ढंग से विक्री की व्यवस्था करना। मुनाफे की दर का निर्णय करना । कॉस्ट एकाउण्टिंग निकालना, या उसपर परि व्यय का हिसाव रखना लाइसेंसनीति और प्रयुक्ति विद्या का स्थानान्तरण नीति, प्रयुक्तिगत मान नियन्त्रण, वाणिज्यिक उद्वत्त

और लेन-देन नीति, मूलधन सृष्टि, ऋण से सम्बन्धित नीति, सरकारी हस्तक्षेप, आर्थिक और सरकारी राजस्वनीति, बैंक व्यवस्था, मूलधन को जुटाने का प्रबन्ध करना, विनिमय व्यवस्था, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था, वाणिज्यिक संघटन, कृषि सहायक और कृषिज और अकृषि-शिल्प की व्यवस्था की परिकल्पना आदि ।

साधारण अर्थनीति - साधारण अर्थनीति का आलोच्य विषय होगा प्रचलित अर्थनैतिक तत्व समूह पर विचार करना, चाहे वह धनतान्त्रिक, समाजतान्त्रिक या (पूंजीवादी) प्राउटिस्ट कोई भी क्यों न हो। आजकल साधारण अर्थनीति नाम से जो पढ़ा-पढ़ाया जा रहा है, वह भी साधारण अर्थनीति के भीतर आता है। साधारण अर्थनीति पर अभी तक कुछ कुछ आलोचना की गई है, यह बात सत्य है, फिर भी इस शाखा के विशेष प्रसार

की सम्भावना है। प्राउट की साधारण अर्थनीति की संरचना मुख्यतः निस्तरीय है-वृहत मुख्य शिल्प, सामवायिक अर्थनैतिक क्षेत्र, (प्राउट की अर्थनीति में यही सर्ववृहत क्षेत्र हैं)। और क्षुद्रायतन शिल्प जो व्यक्तिगत मालिकाने पर चलेगा। वृहत शिल्प ना मुनाफा ना क्षति की नीति के आधार पर चलेगा। साधारण अर्थनीति का और भी आलोच्य विषय होगा अर्थनैतिक इन फास्ट्रक्चर । हर स्तर पर अर्थनैतिक परिकल्पना का समन्वय साधन, ब्लाक भित्तिक परिकल्पना, भविष्य की परिकल्पना, जनसंख्या नीति, कर्मसंस्थान की नीति, साविक कर्म संस्थान नीति, कृषि शिल्प समन्वय की नीति, अर्थनीति का सामाजिकरण, सामवायिक संस्थाओं का क्रमशः उन्नयन, बैंकिंग व्यवस्था, क्रय क्षमता की वृद्धि । माइक्रो-मैक्रो अर्थनैतिक समस्या, कर व्यवस्था, शहर और ग्राम के उन्नयन की व्यवस्था, (urban and

rural development), विकेन्द्रीकरण, शिल्प के क्षेत्र में स्तरविन्यास; प्रतिरक्षा प्रकल्प और व्यय जातीय व आंचलिक आय-व्यय की व्यवस्था (Budgeting), उपयुक्त प्रयुक्ति विद्या का प्रयोग और अर्थनैतिक प्रगति इत्यादि । प्राउटिस्टिक समाज व्यवस्था में अर्थनीति की इन चार शाखाओं में व्यमानवतावाद की भित्ति पर एक ऐसा संयोग व समन्वय साधन किया जायगा जिससे विश्व की सभी सम्पदाओं का सर्वाधिक उपयोग सुसम बन्टन की व्यवस्था की जा सके। जिसके फलस्वरुप मानवप्रगति के साथ विश्व की अन्यान्य शाखाओं की प्रगति का समन्वय किया जा सके ।

(जुलाई, १६८६ कलकत्ता ।)

सूचीपत्र

वाणिज्य और विनिमय

की + अच् क्रय । क्री धातु का अर्थ है विनिमय करना। यह विनिमय मुद्रा में भी होता है और पण्य के माध्यम से भी होता है। किसी को एक छटाक चावल दिया तो विनिमय में पाया दो छटका चंसुर साग । इसी को क्रय कहा जाता है। कुछ पैसे दिये और विनिमय में पाया एक आँटी पुणको साग, हिचे साग। दोनों प्रकार की खरीद क्रय कहलाती है। बंगाल में प्राचीन काल में मुद्रा विनिमय से वस्तु विनिमय का प्रचलन अधिक था । राढ़ की कथ्य बंगला में इसे अदब-बदल कहा जाता है। बीरभूम के बोलपुर के पास एक ग्राममें देखा कि एक बढ़ई बेचने आया जुआ और जूआ, के बदले एक बड़ी

सूचीपत्र

पीतल की कलसी ले कर घर लौटा । पूछा, "कितने में खरीदा भाई" ! उसने कहा जुआ दे कर बदली की है।

वैदेशिक वाणिज्य में जहाँ अदला-बदली की प्रथा से विनिमय होता है, उसे बार्टर ट्रेड (Barter trade) कहते हैं। जिन देशों में बेचने की अधिक वस्तुएँ नहीं होतीं पर खरीदने की होती है और बेचने की चीजे संख्या में कम होने पर भी आयतन में अधिक होती है-उन के लिए विनिमय वाणिज्य अधिक लाभकारी होता है। नहीं तो उनके स्वर्ण वित्त शीघ्र ही समाप्त हो जाने की सम्भावना रहती है। हमारे बंगलादेश, इन्डोनेशिया, मलेशिया, तिब्बत, कम्बोडिया, कम्पूचिया संस्कृत में कम्बोज) देशों के पक्ष में विनिमय वाणिज्य अधिक सुविधाजनक है। प्राचीन बंगाल में बेचने की चीजें बहुत अधिक थीं, पर खरीदने की चीजे थीं कम फिर भी

बंगाली बनिये (उस काल में वैदेशिक-वाणिज्य, गन्धी बनिए और सुवर्ण बनिए ही अधिक किया करते थे, पर दूसरे दूसरे बनिए भी अधिक थे)। विनिमय वाणिज्य अधिक किया करते थे। उसका कारण यह है कि उस काल में जहाजों की अधिकता थी। बंगाली सूत्रधर और जाल बनाने वाले कैवर्त अर्णव विद्या में (marine industy) बहुत समझदार थे। वे लोग अपने बिक्री के सामान को विदेशों में बेचने के लिए ले जाते थे। वे यदि वहाँ पर मुद्रा-विनिमय के आधार पर व्यवसाय करते थे, तब लौटते समय उन्हें बड़े बड़े जहाजों को खाली अवस्था में ले कर लौटना पड़ता था। पण्य विणिमय व्यवस्था के कारण वे भरे जहाज बिक्री के सामान लेकर आना पड़ता । यही विनिमय वाणिज्य की जनप्रियता का मुख्य कारण था। प्राचीन बंगाल में विनिमय वाणिज्य के सम्बन्ध में कहा जाता है

सूचीपत्र

"कुरंग बदले लवंग नेवो कुमकुम बदले चुया
गाछफल बदले जायफल पावो बहेड़ार बदले गुवा ।"

कवि मुकुन्दराम चक्रवर्ती राढ़ बंगाल के रहने वाले थे। उस काल के राढ़ के मनुष्य उसी चीज को विदेश के बाजार में बेचने ले जाते जिन चीजो की राढ़ में अधिकता होती थी और उन्हीं चीजों को वे जहाजों में भर कर लाते, जिनकी राढ़ में कमी होती थी, जैसे-लौंग, चूया, जामफल और गुवा (प्राचीन बंगला में सुपारी को गुवा कहा जाता था) । यह गुवा गृहीत संस्कृत के 'गुवाक' शब्द से आया हैं- सुपारी शब्द उत्तर भारतीय शब्द है। बंगला में यह शब्द बहुत बाद में आया है।) राढ़ के पश्चिमी अंश में वीरभूम, सामन्तभूम, सेनभूम, मल्लभूम, मान भूम आदि अंचलों से पतला बादशाह

भोग चावल (उसकाल में कहा जाता था राजभोग चावल- इसी से पोलाव पकाया जाता था। विष्णुपुरी रेशम, पशमीने का काला कम्बल, शाल की लकड़ी और उससे बनी सामग्री, उड़द की दाल, सूती वस्त्र चीनी, गुड़, कच्चा तांबा और तांबे का सामान, सरसों का तेल, आदि बहुत अधिक मात्रा में लंका, दक्षिण,-पूर्वी एशिया, मिश्र, यूरोप, में भेजा जाता है। इन में जो सामान जहाजों में अधिक जगह लेते, उन के विनिमय में प्रयोजनीय सामान लाया जाता था जो कम से कम जगह लेती थी। वे चीज ज्यादा दामी होती थीं इस तरह से विदेशी स्वर्ण मुद्रा मिल जाती थी। बंगाल में सिहलपाटन, ताम्रलिप्त, चटगाँव बन्दरगाह सामान को भेजने के लिए प्रसिद्ध थे। घूमघाट, बेड़ाचाँपा, महिषादल, जीवनखाली (गोंयेखाली-मिर्जापुर) नलचिति, झालकाठी आदि मध्यम वर्गीय वन्दरगाह सामान की आमदनी और भेजने दोनों

काम थोड़ी थोड़ी मात्रा में होता था । जो भी हो तुम जब यह जान गए कि बंगाल में मुद्रा विनिमय और सामान का विनिमय दोनों प्रकार से क्रय-विक्रय होता था ।

अति प्राचीन काल में ऋगवेदीय युग में (१५००० से १०.०००, हजार बरस पहले सभ्यता अनग्रसर थी। इस युग में खरीद बिक्री कह कर जो समझा जाता है, वैसी बात नहीं थी। उस युग में जो था, वह केवल विनिमय प्रथा या अदल-बदल व्यवस्था थी। किसी को थोड़ा सा जौ दिया (उन दिनों में धान-गेहू के साथ मनुष्य परिचित नहीं था।) मैंने पाया एक पात्र, किसी को कुछ मूग दाल दिया (प्राचीन काल में अड़हर, मसूर और खेसारी दालों से परिचय नहीं था। उसका अधिक परिचय था मटर या कलाई की दालों से, विरि या सावत उड़द

से, और मूंग से तो परिचय था ही।) अनुमान कर सकते हैं कि यह अवस्था बहुत दिनों पहले थी ।

इससे व्यवहारिक क्षेत्र में मनुष्य को असुविधाओं के सम्म्मुखीन होना पड़ता था। जिसे जिस चीज की जब पाना जरूरी है, चीज को जब समय नहीं मिलती थी। या जिस वह चीज तव नहीं बेची जा सकी। इस अवस्था शायद बह चीज उसे उस बेचने की जरूरत है, शायद में क्रय-विक्रय की सम्पदा को संरक्षित वित्त में रूपान्तरित, उस घन को बुरे समय में काम में लगाने के लिये मनुष्य इस प्रकार के विनिमय-वित्त की बात सोचने लगा। भारत में यह विनिमय वित्त पहले व्यवहार होना

शुरु हुआ कौड़ियों*,

* कड़ी-दिये किनलुम
दड़ि दिये बाँधलूम,
हातें दिलूम माकू
एकबार भ्याँ करो तो बाप्पू

(कपर्दक क्वत्थिका) के द्वारा। यह कौड़ियाँ ही क्रय-विक्रय में व्यवहृत प्रथम मुद्राएँ हैं। किसी के साथ किसी चीज का विनिमय करना या अदला-बदली करने का प्राचीन धातु है की। यह एक आत्मनेपदी धातु है-अर्थात् (क्रीणीते, क्रय-विक्रय के माध्यम रूप में जब कौड़ियों का प्रचलन शुरु हुआ, तब साधारण विनिमय के क्षेत्र में (Barter trade Barter Transaction) कौड़ियों के माध्यम से विनिमय का वैशिष्ट्य बताने की जरूरत को मनुष्य ने अनुभव किया। जब वस्तु से वस्तुओं में विनिमय होता

रहा तब वहाँ व्यवहृत हुआ आत्मनेपदी में क्री धातु और जब कौड़ी के माध्यम से होने लगा, जिसको आजकल के विनिमय को कहते हैं खरीदना वेचना (purchase or to buy) : अंगेजी में व्यवहृत Purchase शब्द का अर्थ है विनिमय, Buy शब्द का अर्थ खरीदना, इसीलिये धातु अवश्य क्री हो गया । पर उसका व्यवहारिक रूप हुआ परस्मैपदी अर्थात् 'क्रीणाति' । इसी कारण वैदिक युग के अन्त में क्री धातु उभयपदी बन गया। पाणिणी ने भी इसे उभयपदी मान कर स्वीकृति दी है। और परवर्ती काल के वैयाकरणों ने भी इसे ही स्वीकृति दी है। गुप्त युग में देश देश में विनिमय वाणिज्य (barter bade या barter bansaction) यथेष्ट मात्रा में हो गया, पर हाट बाजार में अदल-वदल की व्यवस्था कम हो गई, मुद्राओं के माध्यम से खरीद-विक्री होने लगी। कौड़ियों के बदले

क्रमशः उन्नततर व्यवस्था के हिसाव से धातुओं की मुद्राएँ चलने लगौं ।

(शब्द चयनिका एकादश खण्ड)

प्रखण्डभित्तिक तथा आन्तप्रखण्ड परिकल्पना

प्रगतिशील समाजतन्त्र की प्रतिष्ठा के लिये, प्राउट परिकल्पित अर्थनीति का समर्थन करना होगा। इस अर्थनीति में मूलतः चार धाराएँ हैं (१) गण-अर्थनीति (Peoples economy), साधारण अर्थनीति (General economy) मानसभौम अर्थनीति (Psyco economy)

सूचीपत्र

वाणिज्यिक अर्थनीति (Commercial economy)- इसका मूल उद्देश्य है शोषित, अवदमित मानव समाज का सर्वात्मक कल्याण का साधन करना। प्राउट स्तर स्तर से अर्थनैतिक परिकल्पना में एक सुसन्तुलितः अर्थनीति को कायम करना चाहता है।

परिकल्ना की चार मौल नीति जो विभिन्न स्तरों में योजना-परिषद के साथ संयुक्त हैं, उस प्रकार के बड़े बड़े अर्थनीतिविद्, जिन्हें किसी परिकल्पना प्रणयन के पूर्व, कई विषयों की ओर विशेष ध्यान देना उचित है वे हैं- (१) उत्पादन का व्यय, (२) उत्पादन क्षमता । (३) क्रेता की क्रय-क्षमता और (४) सामूहिक प्रयोजनीयता ।

अब, उपयुक्त विषयों में से प्रत्येक को लेकर आलोचना की जाय ।

उत्पादन व्यय :- ग्रामीण अर्थनीति का एक बहुत प्रचलित प्रथा है कि ग्राम्य कृषक परिवार के सदस्य, खेत-खम्हार में मिहनत कर फसल उपजाते हैं । किन्तु फसल के मूल्य निर्धारण के समय देखा जाता है कि खेती करने में, सबों ने मिलकर जो श्रम विनियोग किया है, उस सब का हिसाब नहीं किया जाता । कृषक को अपने परिवार के सदस्यों को वेतन नहीं देना पड़ता है। जमीन पर खेती करने से उस पर जितना खर्च पड़ता है, उस सब का हिसाब नहीं करते हैं तथा खेती करने में, यन्त्र आदि का जिस परिमाण में क्षय-क्षति होती है, उसका भी हिसाब नहीं होता है। इसलिये प्रति उत्पादन इकाई में जो वास्तविक खर्च होता है, उसका विज्ञान

सम्मत, वे हिसाब नहीं करते हैं। और इसके फलस्वरूप वे बराबर कृषि में क्षतिग्रस्त होते हैं और फसल का कम दाम पाते हैं।

कृषिज-पण्य के प्रति युनिट उत्पादन का जो असल व्यय है उसका ठीक तरह से निर्धारण करने जाने पर, अर्थनीति का इस दिशा में नये ढंग से पुर्नावन्यस्त करना होगा और सहकारिता की पद्धति से, उद्योग-शिल्प के क्षेत्र में, जो नीति अबलम्बन किया जाय, वही नीति ही कृषि के क्षेत्र में भी प्रयोग करना होगा । प्राउट के विचार से कृषि को भी सुसंगठित उद्योग के समान गण्य करना होगा। तभी कृषि के क्षेत्र में उत्पादन के प्रति युनिट का जो असल खर्च कितना पड़ा वह ठीक तरह से जाना जा सकेगा, तब कृषक को दारिद्र्य दूर

होगा, कृषिकार्य का उपयुक्त मूल्य मिलेगा और कृषि के क्षेत्र में एक निश्चितता देखी जायेगी ।

द्वितीयतः अर्थनीति की, इस दिशा में और एक वैशिष्ट्य हुआ, यह कि कोई उद्योग चाहे वह कृषिनिर्भर या कृषि सहायक हो- किसी निदिष्ट कृषि पण्य का उत्पादन मूल्य, उसका बाजार दर की अपेक्षा-किसी तरह अधिक न हो। प्रत्येक अर्थनैतिक युनिट व्यवसायिक दृष्टिकोण से समर्थन योग्य हो ।

उत्पादन क्षमता : अर्थनीति को ऐसे व्यवस्थित करना होगा, जिसमें

अपने अन्तानहित शक्ति-बल से ही अधिकतर उत्पादन सामर्थ्य अर्जन कर सके । उत्पादित भोग्यपण्य को बाजार में बेचने से जो रुपया पाया गया, उसके साथ साथ उत्पादन में नया भोग्यपण्य विनियोग करना होगा; रुपया को स्थिर न रख कर उसे सचल रखना होगा; क्रेताओं की क्रयक्षमता और समाज के सामूहिक धन-सम्पत्ति के परिमाण को, क्रम वर्धमान रूप में बढ़ाना होगा ।

इस नीति अनुयायी चलकर प्राउट के अर्थनैतिक संरचना को तैयार करने के लिये, परिकल्पना प्रणयनकारी लोग अर्थनीति को इस तरह व्यवस्थित करेंगे, जिससे सामूहिक आवश्यकता के अनुसार सर्वाधिक उत्पादन लिया जा सके । इसका अर्थ यह हुआ, पूर्ण विनियोग नीति और उपभोग के लक्ष्य-भित्ति

से वधित उत्पादन नीति को, समर्थन करना। इसका अनिवार्य फलश्रुति होगी यह कि इससे मनुष्य की क्रय-क्षमता बढ़ जायेगी। द्वितीयतः कोई उत्पादनक्षम अर्थ-नैतिक युनिट, बेकार या अव्यवहृत नहीं रह सकेगा। तृतीयतः यदि पूरी अर्थनैतिक संरचना के सर्वाधिक उत्पादन सामर्थ्य को कार्य में लगाया जाय तो, उससे एक ऐसा अनुकूल अर्थनैतिक परिवेश गठित हो उठेगा, जिससे विनियोगकारी लोग उत्पादन के क्षेत्र में अधिकतर विनियोग करना चाहेंगे, व्यापन तर शिल्पायन का परिवेश तैयार होगा, अधिक रोजगार प्रदान करने वाले संस्थान तैयार होंगे, उत्पादित सम्पद के परिमाण की वृद्धि होगी, मनुष्य की क्रय-क्षमता बढ़ जायेगी और विनियोग योग्य मूलधन का परिमाण, क्रमबद्ध मान रूप में, बढ़ जायेगा।

मनुष्य, जहाँ सामाजिक-अर्थनंतिक युनिट की माँग और सामर्थ्य का विचार कर चलेगा, उस क्षेत्र में उत्पादन क्षमता की नीति कल्याण प्रद होने को बाध्य होगी। जहाँ कच्चा माल सस्ता और सहज लभ्य है, उत्पादन भी वहाँ सहजसाध्य हो जायेगा ।

क्रय क्षमता :- परिकल्पना का और एक मौलिक उद्देश्य है समाज के प्रत्येक मनुष्य की क्रय-क्षमता बढ़ाना । प्रति मनुष्य के पीछे आय, जो अबतक जनसाधारण के अर्थनैतिक सूचक उन्नति का यथार्थ मानदण्ड कह कर गण्य करने की जो प्रथा प्रचलित है, प्राउट उसका समर्थन नहीं करता है। प्रत्येक मनुष्य के पीछे आय के हिसाव से, सामाजिक सामूहिक सम्पत्ति का परिमाण निर्धारण करना एक विभ्रान्तिकर प्रतारणामूलक तथा अत्यन्त त्रुटिपूर्ण पद्धति है।

सूचीपत्र

साधारण मनुष्य को मूर्ख बनाने के लिये तथा उनके शोषण को जनता के समक्ष ढंक कर रखने के लिये, पूँजीवाद के तल्पीवाहक (गठरी ढोने वाले) अर्थनीतिविद् लोगोंने इस तत्त्व को जन-साधारण के बीच प्राचरित किया था। इस विषय में प्राउट का सुस्पष्ट अभिमत है- वह यह की- मनुष्य की यथार्थ अर्थनैतिक उन्नति का परिचय समझा जायेगा, प्रति मनुष्य के पीछे आय देख कर नहीं, उसकी वास्तविक क्रय क्षमता को देख कर । यह बड़ी बात नहीं है कि किसने कितने हजार रुपये की नकद आय की, आय के रुपये से उसने कितना भोग्यपण्य प्राप्त किया, यही बड़ी बात है ।

१। मनुष्य के सामूहिक प्रयोजन के अनुसार पर्याप्त सामग्रियों की व्यवस्था करनी होगी ।

२। भोग्यपण्य अर्थात् भोग्यवस्तुओं का बाजार दर के अनुसार मूल्य निर्धारित कर देना होगा

३। मुद्रा स्फीति को रोकना होगा ।

४। क्रम-वर्द्ध मान अनुपात से बीच बीच में मजदूरी और मासिक आय का परिमाण बढ़ाना होगा ।

५। सामूहिक सम्पत्ति का परिमाण बढ़ाते जाना होगा।

प्राउट की अर्थनीति के अनुसार मनुष्य की क्रयक्षमता की कोई सर्वोच्च सीमा नहीं बाधना होगा। अर्थात् प्राउट अर्थनीति के रूपायनकारियों का यह

उत्तरदायित्व रहेगा कि वे मनुष्य की क्रय-क्षमता को क्रमवद्ध मान अनुपात से बढ़ाते जायेंगे। किसी विशेष काल में मनुष्य के न्यूनतम प्रयोजन के अनुसार क्रयक्षमता निर्दिष्ट हो सकती है, उसके बाद स्थान-काल-पात्त्र के परिवर्तन के साथ सामञ्जस्य रख कर क्रयक्षमता को उत्तरोत्तर बढ़ाते ही जाना होगा। इसलिये प्राउट का लक्ष्य हुआ संश्लिष्ट अर्थनैतिक युनिट की आर्थिक उन्नति के अनुसार मनुष्य की क्रयक्षमता, क्रमवद्ध मान अनुपात से बढ़ाते रहना ।

सामूहिक प्रयोजन :-

जो अर्थनैतिक परिकल्पना के रूपकार हैं, उन्हें उचित है कि आज के मनुष्य का सामूहिक प्रयोजन क्या

है? और भविष्यत् में मनुष्य का क्या प्रयोजन होगा इस सम्बन्ध में, एक स्वच्छ धारणा बनालें। उसी परिप्रेक्ष में, उन्हें अर्थनैतिक उन्नयन की परिकल्पना का, प्रणयन करना होगा। उदाहरण स्वरूप कहा जा सकता है, हमलोगों के भारतवर्ष में अबतक अनेक औद्योगिक व कल-कारखाने ही स्थापित हुये हैं ठीक, किन्तु प्रयोजनीय विद्युत् उत्पादन की वृद्धि की कोई वास्तविक परिकल्पना नहीं ली गई है। उपयुक्त परिकल्पना के अभाव में उद्योग की उन्नति जिस अनुपात में हुई है, उस अनुपात में विद्युत् उत्पादन नहीं हुआ है। बंगाल और विहार के क्षेत्र में यह बात अत्यन्त प्रकट रूप से देखी जाती है। मनुष्य की सामूहिक प्रयोजन पूत्ति के क्षेत्र में वृहत् प्रकार की सामञ्जस्यहीनता-वृहत प्रकार की प्रमाहीनता दृष्टिगोचर होती है।

प्लानिंग मिसिनरी :-

प्राउट का जो अर्थनैतिक परिकल्पना मिसिनरी है, वह मुख्यतः कार्य करेगी केन्द्रीय स्तर में, राज्यस्तर में, जिला स्तर में, व्लौक स्तर में (अवश्य ही वर्ल्ड गवर्मेण्ट प्रतिष्ठा के बाद ग्लोबल स्तर में भी यह परिकल्पना मिसिनरी कार्य करेगी)। जो परिकल्पना-मिसिनरी कार्य करगी प्राउट की अर्थनीति के लिये, वही होगी सर्वनिम्न परिकल्पना संस्था । अर्थनैतिक क्षमता के विकेन्द्रीकरण के लिये, परिकल्पना को नीचे स्तर से ऊपर स्तर की ओर ले जाना होगा। वही है नीति ।

आजकल जिस तरह ब्लौकों की सीमा निर्धारित हुई है, वह हुई है अनेक राजनैतिक विचार-विवेचना की

भित्ति से। प्राउट, इस तरह की राजनैतिक इच्छानुसार सीमानिर्धारण की नीति का समर्थन नहीं करता है। प्राउट का वक्तव्य है- कई निर्दिष्ट तत्त्वों की भित्ति से ब्लोकों की सीमानिर्धारित करनी होगी- (१) संश्लिष्ट इलाका की भूमि प्रकृति (नदी-उपत्यका की बात याद रखनी होगी)। (२) जलवायुगत अवस्था जी (Variying climatic -condition) है (३) जमीन का ढाल (Topography) (४) स्थानीय मिट्टी की प्रकृति (Nature of soil), (५) संश्लिष्ट इलाका के मनुष्य का सामाजिक, अर्थनैतिक प्रयोजन और समस्या, (६) वहाँ के पशु-पक्षी और उद्भिज के विषय में, (७) वहाँ के मनुष्य की शारीरिक मानसिक आशा-आकाङ्क्षाओं की बात । सृष्ट विकेन्द्रीकृत अर्थनैतिक परिकल्पना ही इस वैज्ञानिक और विधि सम्मत व्लौक सीमा निर्धारण-भिति के विचार

से, लेना उचित है। जब विशेष किसी एक निदिष्ट ब्लौक के सर्वात्मक विकाश के लिये परिकल्पना सूची तैयार की जाय, तो उसे कहा जायेगा आन्तव्लौंक परिकल्पना (Intra Block Planning)। प्राउट अर्थनीति की संरचना में प्रत्येक ब्लौक के लिये पृथक पृथक उन्नयन परिकल्पना रहेगीं। तब उस क्षेत्र में, उस संश्लिष्ट ब्लौक को उस अर्थानैतिक इलाका (Economic zone) के उन्नयन परिकल्पना का सर्वोच्च परिकल्पना के साथ सामञ्जस्य रख कर चलना होगा । फिर, एक ब्लौक की कई ऐसी समस्याएँ हो सकती हैं, जिसका समाधान उस संश्लिष्ट ब्लौक के अधिकार में नहीं है- जैसे बाढ़-नियन्त्रण, नदी-उपत्यका परिकल्पना, योगायोग (Communication) व्यवस्था, उच्चतर शिक्षा-प्रतिष्ठान, वन-रचना, आर्थिक परिवेशगत प्रभाव, बड़े बड़े उद्योगों की स्थापना, भूमि-क्षयरोध, जल-आपूत्ति, विद्युत् उत्पादन, सुपरिचालित

बाजार इत्यादि की समस्या का सुन्दर रूप से समाधान, कोई भी ब्लौक नहीं कर सकता। इसलिये इन्टरब्लौक (Inter Block planning) परिकल्पना नितान्त आवश्यक है। यह इन्टरब्लौक परिकल्पना है - सुनिर्वाचित कई क्षेत्रों में, ऐसे अर्थनैतिक उद्योग, जिसके द्वारा सन्निकट कई ब्लौक, पारस्परिक सहायता और सहयोगिता की भित्ति से, संश्लिष्ट ब्लोकों का यौथ उन्नयन कर सके। प्राउट अर्थनीति द्वारा व्लौक स्तरीय योजना-संस्थाओं को संवैधानिक स्वीकृति देनी होगी ।

उदाहण स्वरूप हमलोग कह सकते हैं कि पञ्जाब का उन्नयन-प्रकल्प और कौवेरी उपत्यका का उन्नयन प्रकल्प निश्चय ही एक प्रकार का नहीं होगा। पञ्जाब उत्नयन प्रकल्प रचना करने के लिये प्रथम यह ध्यान में रखना होगा कि पञ्जाब का अर्थ ही है पश्च नदी का

देश-शतद्र (Sutlej), विपोसा (Bias); इरावती (Ravi), चन्द्रभागा (Chenub) और वितस्ता (Jhelam)। ये सब नदियाँ हिमालय पर्वत से निकली हैं। इसलिये हिमालय से पिघले बर्फ के जल से ये बारह महीने पूर्ण रहती हैं। दूसरी और कौवेरी उपत्यका की नदियों में, घाट से उत्पन्न होने के कारण विशेष विशेष ऋतु में ही जल रहता है। पञ्जाब की नदियों के समान बारहो मास पिघले बर्फ के जल से भरी नहीं रहती । अवश्य ही यह ठीक बात है कि कौवेरी उपत्यका में वर्ष में दोबार वर्षाऋतु आती है; इसलिये ये नदियाँ बर्फ पिघले जल से भरी नहीं रहती हैं। इसलिये पञ्जाब की नदियों से अनायास जलविद्युत् उत्पादन किया जा सकता है। कौवेरी उपत्यका की नदियों में वह सुयोग नहीं है। जैसे भाखरा-नाङ्गल बाँध से हमलोग जिस तरह या जितना

जलविद्युत पा सकते हैं- कौवेरी या तुङ्ग-भद्रा से उतने परिमाण में जलविद्युत् की आशा नहीं कर सकते ।

दितीयतः कौवेरी उपत्यका विषुवत रेखा के निकट होने से शीत-ग्रीष्म ऋतु का प्रभाव प्रकट रूप से अनुभूत होता है- जलवायु चरम अवस्था में है। पञ्जाब का भी जलवायु चरम है, परन्तु वह दूसरे कारण से है। पञ्जाब के उत्तर-पूर्व कोण से दूरसे बहकर आते हुए वायु के प्रकोप से पञ्जाब की जलवायु चरम रूप धारण करती है। कौवेरी उपत्यका में इस प्रकार का दूरन्त वायु-प्रकोप नहीं है।

तृतीयतः कौवेरी उपत्यका के जिस अंश को हमलोग दाक्षिणात्य मालभूमि कहते हैं, वह मुख्यतः

लाल मिट्टी का देश है। कौवेरी उपत्यका का एक छोटा भाग पोली मिट्टां से बनी समभूमि है। पञ्जाब की सब समतल भूमि है। इसलिये दोनों भूमि के लिये उन्नयन-योजना तैयार करने के लिये जलवायु तथा भू-प्रकृतिगत तारतम्य की बात पर ध्यान देना होगा ।

चतुर्थतः दाक्षिणात्य उपद्वीप में हैं चार उपकूल भाग - महानदी से गोदावरी तक उत्कल उपकूल, गोदावरी से कन्याकुमारी तक मालावार उपकूल, और गोआ से गुजरात पर्यन्त कोङ्कण उपकूल । इस विस्तीर्ण उपकूल भाग को भारत वर्ष का अन्न भाण्डार (Granaries of India) कहते हैं। किन्तु तेलाङ्गना इलाका में खाद्यान्न का अभाव लगाही रहता है।

कौवेरी उपत्यका का पूर्वाञ्चल करमण्डल उपकूल भाग के लिये सुनिदिष्ट उन्नयन प्रकल्प प्रणयन करना उचित है। दक्षिणात्य की मालभूमि अञ्चल में ताड़ के वृक्ष होते हैं, नारियल के वृक्ष होते हैं, किन्तु उपकूल भाग में ताड़ और नारियल दोनों ही होते हैं।

इसलिये मैंने कहा था-विभिन्न स्थान के लिय उन्नयन योजना तैयार करने के लिये कहाँ की भू-प्रकृति, जलवायु, मिट्टी का प्रकार इत्यादि संश्लिष्ट उपादान आदि की बातों पर ध्यान रखकर उसके अनुसार योजना बनानी होगी। इसलिये पञ्जाव और कौवेरी उपत्यका की योजना कभी भी एक प्रकार की नहीं होगी ।

*　　*　　*　　*

मैंने पहले ही कहा है- ब्लोक स्तरीय उन्नयन योजना से अनेक लाभप्राप्त होगा । जैसे-जिस ब्लौक के लिये विकास योजना बनायी जायेगी उसका भौगोलिक आयतन अपेक्षाकृत छोटा होने से, योजना- प्रणेता लोग संश्लिष्ट छोटे-बड़े सब समस्याओं के विषय में जान सकते हैं, स्थानीय नेतागण इलाके की आवश्यक समस्याओं के समाधान के लिये आगे बढ़ सकेंगे, सुदूर राजधानी के वातनुकूलित कमरे में बैठ कर नहीं, एकदम संश्लिष्ट ब्लोक की कठिन मिट्टी पर बैठकर विकास-परियोजना का नकशा तैयार हो रहा है- वह योजना अधिक वास्तविक तथा फलप्रद होने के लिये वाध्य है। और शीघ्र ही उसका लाभ भी प्राप्त होगा। स्थानीय सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिषद भी संश्लिष्ट इलाके की जनशक्ति और वस्तुसम्पत्ति को कार्य में लगाने के लिये सुयोग पायेंगे, स्थानीय बेकारी की समस्या का

सहज ही समाधान का सुयोग प्राप्त होगा । गाँव के रहने वालों की क्रय-क्षमता बढ़ेगी, और सुसन्तुलित अर्थनीति का एक मजबूत बुनियाद तैयार होगा ।

प्रमा की प्रतिष्ठा :-

जिस तरह ब्लौक विकास योजना की बात कही गई, उस तरह की योजना रचित होने से एक सुसन्तुलित अर्थनैतिक परिवेश तैयार हो उठेगा ही; समाज के प्रत्येक सदस्य की आर्थिक सुरक्षा हो सकेगी; क्योंकि उसके द्वारा मनुष्य की मौलिक आवश्यकतायें (खाद्य, वासस्थान, वस्त्र, चिकित्सा और शिक्षा व्यवस्था) की आपूत्ति करना सम्भव हो सकेगा। इससे समाज में एक उपयुक्त भारसाम्य और स्थितावस्था

(जिसे एक ही बात में कहेंगे 'प्रमा') प्रतिष्ठित हो सकेगी, सामाजिक अर्थनैतिक क्षेत्र में उपत्निकोणों के बीच एक सुन्दर सामन्जस्य आ सकेगा। कृषि, उद्योग, व्यवसाय-वाणिज्य, शक्ति और जल-आपूत्ति, मूलधन-विनियोग, उत्पादन, वण्टन का प्रबन्ध और माँग - सब क्षेत्र में एक प्रमा का अनुकूल परिवेश तैयार होगा। भौतिक क्षेत्र में प्रमा प्रतिष्ठित हुआ है, यह तभी बोलेंगे जब निम्नोक्त चार चीजें देखेंगे

भौतिक स्तर में सामञ्जस्य पूर्ण लोक-त्रिकोण तथा प्रमा-त्रिकोण तैयार करने के लिये चार तत्वों की बातों पर अवश्य ही विवेचना करनी होगी ।

कणिका में प्राउट

१।

वर्तमानकाल की भौतिक माँग और निकट भविष्यत् की भौतिक-माँग ।

२। वर्त्तमान काल की भौतिक अभावों की आपूत्ति की व्यवस्था और निकट भविष्यत् की भौतिक अभावों की आपूत्ति का प्रबन्ध ।

३।

भूमि के सर्वाधिक उपयोग की व्यवस्था ।

सूचीपत्र

४।

प्राउट के पाँच मौल सिद्धान्त की भित्ति से संश्लिष्ट प्रत्येक विषय की समस्या का समाधान, उपर्युक्त चार तत्वों पर जहाँ ठीक तरह से प्रतिष्ठित हुआ है, तब समझना होगा कि भौतिक स्तर में प्रमा-संवृद्धि प्रतिष्ठित हुई है। उसके बाद मनुष्य मानसिक स्तर में प्रमा-ऋद्धि और आध्यात्मिक प्रमा-सिद्धि के लिये प्रचेष्टा चलाता जायेगा ।

सूचीपत्र

शासन व्यवस्था के कई रूप

खण्डिन शब्द का एक अर्थ है जो वस्तु अनेक टुकड़ा या भाग के समवाय से तैयारहो जैसे-'बालकन' । बालकन कहने से वह भूतण्ड समझा जाता है जो ग्रीस, रोमानिया, आलबानिया प्रभृति कई राष्ट्र के समवाय से तैयार हुआ है।

खण्डिन शब्द का और एक दूसरा अर्थ अंगेजी में है- जिसको फेडरल-स्टेट कहते हैं अर्थात् जो राष्ट्र अनेक अङ्ग राज्य के समवाय से तैयार हुआ है, जैसे भारत राष्ट्र । यहाँ के संविधान के अनुसार Federal Government या केन्द्रीय सरकार के अधीन में है- अनेक अङ्गराज्य या Unitary state. यह याद रखने की

जरूरत है कि Unitary और Unitarian दोनों शब्द मानार्थक नहीं हैं। Totalitarion - शब्द से भी इन दोनों का पार्थक्य स्मर्तव्य है। संविधान में Federal state या केन्द्रीय सरकार और Unitary state या अङ्गराज्य की सीमा और अधिकार निर्धारित कर दिया गया है। उद्योग, शक्ति (Power) सिचाई, योगायोग व्यवस्था आंशिक रूप से केन्द्रीय सरकार, आंशिक रूप से अङ्गरराज्य सरकार के अधीन दिया गया है। आवकारी विभाग भी आंशिक रूप से केन्द्रीय सरकार (जैसे चीनी, तम्बाकू, पाट (जूट), चाय, कोयला) के अधीन है, वैसे ही आंशिक रूप से अङ्गराज्य सरकार के अधीन (गाँजा, भाँग, शराब) दिया गया है। हमलोगों के देश में पाट (जूट), चाय, तम्बाकू और कोयला - बंगाल में ये चार प्रधान अर्थकरी व्यवसायव में से कोई एक भी अङ्गराज्य के अधिकार में नहीं दिया गया है। ऐसी कुछ

क्षमता थीं जो अङ्गराज्यों को दी गई थीं, बाद में संविधान में संशोधन कर केन्द्रीय सरकार के अधिकार में दे दिया गया था । जैसे पाट-जूट उद्योग, आरम्भ में राज्य सरकार के अधीन था, बाद में केन्द्रीय सरकार के अधीन चला गया। शिक्षा आरंभ में मोटा-मोटी विचार से अङ्गराज्य के अधिकार में था, केन्द्रीय सरकार सिर्फ कुछ नीति निर्धारित कर देती थी, राय- परामर्श देती थी, किन्तु अभी शिक्षा दोनों के अधिकार में है ।

वैदेशिक वाणिज्य और अन्यान्य वैदेशिक विषय, प्रतिरक्षा, मुद्रा प्रभृति जो प्रारम्भ में केन्द्रीय सरकार के अधिकार में थी, वह आजभी केन्द्रीय सरकार के अधिकार में रह गयी है। किन्तु पुलिस व्यवस्था पूर्व में सम्पूर्ण रूप से अङ्गराज्य के अधिकार में थी। अभी वह केन्द्रीय सरकार के अधिकार में आने से अङ्गराज्य

सरकार का अधिकार कम हो गया है। केन्द्रीय सरकार का संरक्षित पुलिस CRP (Central Reserve Police) पहले संविधान-गत रूप से नहीं था, अभी वह हो गया है।

जो भी हो पृथ्वी के अनेक देशों में इस तरह के फेडरल सरकार हैं। वह है अमेरिका में, वह है रूस में। किसी २ फेडरल राष्ट्र में अङ्गराज्य को कुछ कुछ वैदेशिक अधिकार है। वे राष्ट्र संघ में (UNO) में अपना सदस्य भेजने के अधिकारी भी हैं। रूस देश के अङ्गराज्यों का, कागज कलम में, अनेक अधिकार होने पर भी, इतना ही नहीं स्वायत्त शासन का तो है ही, विशेष विशेष क्षेत्र में विच्छिन्न होने का अधिकार रहने पर भी कार्यक्षेत्र में किन्तु कोई अधिकार नहीं है, ऐसा कहा जा सकता है। ग्रेट ब्रिटेन का भी अङ्गराज्य है-जैसे वेल्स, स्कौटलैंड, आलष्टर (उत्तर आयरलैंड)। इनके

अधिकार सीमित हैं। दो एक अधिकार को छोड़कर भारत के अङ्गराज्यों की अवस्था प्रायः नगरपालिका की (Munispality) तरह है। वे अच्छी तरह से शासन चला नहीं पाते हैं, यह युक्ति बता कर केन्द्रीय सरकार, राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त राज्यपाल के परामर्श पर मन्त्रोसभा को बर्खास्त कर सकती है, विधान सभा (Legislative Assembly) या व्यवस्थापक परिषद को (Legislatiue Council) को बर्खास्त कर सकती है, इस क्षेत्र में संश्लिष्ट अङ्गराज्य सरकार की परिषदीय संख्या गरिष्ठता कितना भी अधिक कयों न हो। ध्यान देने योग्य बात यह है कि संविधान संशोधन के फलस्वरूप अङ्गराज्यों का अधिकार नहीं बढ़ा है, यही कहना पड़ेगा। वरन् क्रमशः अङ्गराज्यों का अधिकार सङ्घ चित हुआ है।

फेडरल स्टेटों में कौन कौन राष्ट्रपति-गत है, कौन २ पार्लियामेंट-गत है ? जहाँ पालियामेंटगत है, वहाँ सम्पूर्ण अधिकार पार्लियामेण्ट या प्रधान मन्त्री के हाथ में रहता है; जहाँ राष्ट्रपतिगत होता है, वहाँ सारा अधिकार राष्ट्रपति या प्रेसिडेण्ट के हाथ में रहता है। अमेरिका के प्रेसिडेण्ट के हाथ में है विशाल अधिकार । भारत के प्रेसिडेण्ट के हाथ अधिकार नहीं है, ऐसा कहा जा सकता है। उन्हें प्रधानमन्त्री के निर्देश से ही कागज पत्त्र पर हस्ताक्षर करना पड़ता है। भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन में जनसाधारण का कोई प्रत्यक्ष अधिकार या दायित्व ही नहीं है। किन्तु किसी किसी देश में विशेष रूप से जिस देश की शासन व्यवस्था राष्ट्रपतिगत (Presidential) होती है, वहाँ राष्ट्रपति का निर्वाचन होता है जनसाधारण के वोट के आधार पर, कई तो प्लेबिसाइट के अनुसार होता है। राष्ट्र की शासन

व्यवस्था कैसी होनी चाहिये; फेडरल राष्ट्र के शासन में अङ्गराज्य और केन्द्रीय सरकार का अधिकार कैसा होना उचित है; इस पर विश्व के विभिन्न देश में आज भी परीक्षा-निरीक्षा चल रही है। निरपेक्ष रूप से बोलने पर कहूँगा-पालिवामेष्टगत गणतन्त्र में आज भी ब्रिटेन सत्र के ऊपर चैम्पियन बना हुआ है। कोई उसका मुकाबला नहीं कर सकता । और Presidential या राष्ट्रपतिगत शासन व्यवस्था में रूस की अपेक्षा अमेरिका बहुत आगे है। फान्स के संविधानगत व्यवस्था में प्रेसिडेण्ट के हाथ में अधिकार रहने पर भी, वह इस तरह निर्मित है कि राष्ट्र व्यवस्था कभी भी भग्न होने को बाध्य है। फान्स में पेत्याँ की अमल्दारी में यह बात खूब अच्छी तरह देखी गई थी। जो भी हो तुमलोगों ने समझा Federal-State या Federated state, इसका उपयुक्त शब्द है- 'खण्डिन राष्ट्र'

* * * * * *

'खण्डिन' शब्द का एक और अर्थ है- जिसका अनेक विभाजन हुआ है। यही देखो न. हमलोगों का आनन्दमार्ग दर्शन । यह मुख्यतः आध्यात्मिक दर्शन है (based on spirituality) । किन्तु इसमें, मानसिक स्तर का भार-सार (सन्तुलन) (equipoise) और भारसा म्य (equilibrium) की रक्षा के लिये विशेष रूप से जो तत्व रचित हुआ है, उसका नाम है - Neo Humanism या नव्य मानवतावाद । फिर, यद्यपि मनुष्य का अस्तित्त्व मुख्यतः मानसिक और आध्यात्मिक है, किन्तु स्थूल अस्तित्व के लिये अन्न, वस्त्र, चिकित्सा, शिक्षा, वासस्थान के लिये अर्थनैतिक - राजनैतिक खींचातानी रहती है। इस समाधान के दिग्दर्शन के लिये जो दर्शन

है, उसका नाम है (Prout: progressive Utilisation Theory)। इसलिये आनन्दमार्ग दर्शन है-सर्वानुस्यूत खण्डिन दर्शन । प्राचीन काल से विभिन्न मनुष्य राष्ट्रनैतिक व्यवस्था के विषय में अनेक परिक्षा-निरीक्षा कर रहे हैं। दीर्घकाल के राजनैतिक विवर्तन के फल स्वरूप मनुष्य ने जो विभिन्न शासन तान्त्रिक संरचना का उद्-भावन किया है, उसकी कई संज्ञाएँ नीचे दी जाती हैं-

१। स्वायत्त शासन (Autonomy - जहाँ कोई जन-गोष्ठी आभ्यन्तरीण शासन के विषय में विभिन्न क्षेत्र में स्वाधीन है।

२। स्वैराचारी शासन तन्त्र (Autocracy) जहाँ शासनकर्त्ता का स्वेच्छा-चार है- अपनी इच्छानुसार शासन तन्त्र को परिचालित करता है। (Ruling as per whims).

३। अमला तन्त्र (Bureaucracy) जिस शासन व्यवस्था में राजा या राष्ट्रप्रधान का नहीं, राज्य या राष्ट्र के सरकारी अमलों (अधिकारियों) की इच्छानुकूल शासन यन्त्र परिचालित होता है (Ruling as per the whims of government oficials).

४। ओलिगार्की (Oligarchy) जिस शासन व्यवस्था में सुविधावादी मुट्ठीभर कुछ लोग अपने गोष्ठीस्वार्थ की प्रेरणा से राष्ट्र शासन परिचालना करते हैं।

५। राज्य (Kingdom) जिस शासनतान्त्रिक संरचना में राजा ही सर्वमय कर्त्ता (A state having a King as a ruler) कहते हैं। राज्य और राज्य तन्त्र में अन्तर है- जिस अञ्चल का शासन राजा के द्वारा चलता है- वह है राज्य । और राजतन्त्र है एक शासन व्यवस्था, इसलिये Kingdom है material noun और राजतन्त्र है भाववाचक विशेष्य ।

६। साम्राज्य (Empire) जिस शासन तान्त्रिक संरचना में एक सम्राट, राष्ट्र का सर्वमय कर्त्ता हो। यहाँ सम्राट उन्हें कहते हैं, जो अपने राष्ट्र के अलावे अन्य राष्ट्र के शासन तान्त्रिक प्रधान के रूप में स्वीकृत हैं। (An emperor is a King ruling over other countries along with his own).

७। सामन्त तन्त्र (Feudalism) जिस शासन तान्त्रिक ढाँचे में कोई सामन्त नृपति, किसी बड़े नृपति के अधीन शासन परिचालना करते हैं (A Feudal chief is a king under a big king).

8..साधारणतन्त्र (Republic) जिस शासन तान्त्रिक ढाँचे में राष्ट्र-प्रधान, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जन-गण के द्वारा निर्वाचित होते हैं। ८।

9. गण तन्त्र (Democracy) - जिस शासन तान्त्रिक ढाँचे में संश्लिष्ट सरकार सीमित अथवा साधारण निर्वाचन के माध्यम से जनता के द्वारा निर्वाचित होती है। जिस जन-तान्त्रिक देश का राष्ट्र-प्रधान जन-तान्त्रिक तरीके से निर्वाचित होते हैं, उसे साधारण-तन्त्र कहते हैं। और जिस जन-तान्त्रिक देश का राष्ट्र-प्रधान

जनतान्त्रिक तरीके से निर्वाचित नहीं होते हैं, उस देश को साधारण तन्त्र नहीं कहा जायेगा । वह एक राज्य या साम्राज्य (Kingdom or Monarchy)। अथवा ओलिगार्की अथवा सीमित साधारणं तन्त्र (Restricted Re-prublic) है। इस विचार से भारतवर्ष जनतन्त्र और साधारण तन्त्र दोनों ही है। किन्तु ग्रेट ब्रिटेन को जनतन्त्र और राज्य (Kingdom) कहेंगे। इस विचार से ऑस्ट्रेलिया है जनतन्त्र किन्तु उसे साधारण तन्त्र नहीं कहा जायेगा; क्योंकि ऑस्ट्रेलियो के संविधान के अनुसार ब्रिटिश राजा या रानी को, ऑस्ट्रेलिया के नियम-तान्त्रिक प्रधान के रूप में, मान्यता दी गई है। सोवियेत युक्तराष्ट्र जनगण के प्रतिनिधि मूलक गणतन्त्र तथा (Peoples democracy) नहीं है। इसलिये वह सीमित साधारण-तन्त्र (Restricted Republic) है।

"(Sarkar's English Grammar & Composition से उद्धत)

10.पूर्णतन्त्र वाद (Totalitarianism) - जिस शासन तान्त्रिक ढाँचे में सिर्फ एक ही राजनैतिक दल, राष्ट्र क्षमता को परिचालित करता है। Totalitarian माने समग्र-सम्बन्धीय इस प्रकार की शासन व्यवस्था में साधारण जन-गण के मतामत का मूल्य नहीं होता । शासन-क्षमता में अधिष्ठित राजनैतिक दल की इच्छा अनिच्छा ही सब कुछ होता है। ष्टैलिन की अमलदारी में उसके मुँह की बात ही था सोवियेत युक्तराष्ट्र का कानून ।

11 फासिष्ट वाद (Fascism) जो शासन-व्यवस्था, स्थूल क्षात्तमनोभावापन्न एक या एकाधिक नेता के

पाशविक शक्ति (brute force) द्वारा चालित होती है। वेनितो मुसोलिनी की अमलदारी में इटली में इसी प्रकार का फासिष्ट-वाद प्रचलित था, यद्यपि उस देश में वंशानुक्रमिक राजतन्त्र प्रतिष्ठित था। किन्तु राष्ट्र का सर्वमय कर्तृत्व था असल में वेनितो मुसौलिनी के अधिकार में ।

12.नात्सो वाद (Nazism) - यह एक प्रकार की शासन व्यवस्था है जो स्थूल क्षात्त्रमनोभावापन्न एक या एकाधिक नेता की पाशविक शक्ति के द्वारा परिचालित तोती है। फासिष्टवाद और नात्सीवाद के बीच पार्थक्य है यह कि हिटलर के समय जर्मनी में एक निर्वाचित उपदेष्टा परिषद (Elected Advi-sory Council) था ।

४थी जनबरी, १६८१ कलिकाता

मूल अंग्रेजी से बँगला में अनूदित ।

आदर्श संविधान के लिये प्रयोजनीय उपकरण

समाज चक्र के परिवर्त्तत्न के साथ साथ समाज के दायित्व और कत्र्तव्य पालन के प्रयोजन में, मनुष्य समाज में कुछ संस्थाओं का उद्भव होता हैं, उनमें राष्ट्र एक महत्वपूर्ण संस्था है। एक विशेष अञ्चल में रहने वाली कोई जनगोष्ठी के अपने मङ्गल और उन्नति के प्रयोजन में, अपने शासन परिचालना के लिये, जिस

सूचीपत्र

संस्था की सृष्टि होती है, वही है राष्ट्र। यह संस्था बहुत ही शक्तिशाली होती है; क्योंकि देश की सर्वभौम क्षमता उसीके हाथ रहती है।

अधिकार का केन्द्रीकरण है बहुत विपज्जनक बात, यदि किसी कानून या आदर्श के द्वारा अधिकार केन्द्रीकरण पर नियन्त्रण या परिचालना न की जाय । जिस निर्देशक पुस्तक में राष्ट्र की आचरणविधि, कानून, और आदर्श को लिपिबद्ध किया जाता है, उसको संविधान कहते हैं। संविधान या शासन-तन्त्र राष्ट्रको, उसकी नीति और आदर्श की सहायता से जनसाधारण को, द्रुत प्रगति और सर्वात्मक उन्नयनमूलक सेवा कार्य के उद्देश्य की ओर परिचालना करता है।

विश्व के इतिहास में प्रथम लिखित संविधान रचित हुआ था, ढाई, हजार वर्ष पहले वैशाली के लिच्छवी राजत्व काल में। उसके पहले राजा के मुख की बोली ही कानून था, और राजा मन्त्रीमण्डल की राय के अनुसार राज्यशासन चलाते थे । प्रथम प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र प्रतिष्ठित हुआ था लिच्छविओं द्वारा । लिच्छवीराज्य का इलाका था वर्तमान विचार के मुजफ्फरपुर, वेगूसरायं का कुछ अंश, समस्तीपुर, गण्डक और कमला नदी के अन्तवर्ती क्षेत्र, हाजीपुर तक । लिच्छवी राज्य ही, विश्व में सर्वप्रथम गणतान्त्रिक राष्ट्र था, जिसका अपना लिखित संविधान था ।

ब्रिटिश संविधान कह कर कुछ नहीं है, इसका कुछ लिखित रूप नहीं है। सिर्फ कुछ लोकाचार और देशाचार का संकलन है। तदैव विचार से राष्ट्रप्रधान हैं

राजा अथवा रानी । तत्वतः समस्त राष्ट्रक्षमता राजा और रानी के हाथ में न्यस्त है। किन्तु वास्तव में प्रधान मन्त्री ही सारा अधिकार संसदीय सरकार के प्रधान के रूप में, कार्य में प्रयोग करते हैं। फान्स में प्रतिष्ठित है, राष्ट्रपति शासित सरकार Presidential form of government)। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भी है राष्ट्रपति शासित सरकार । फान्स और अमेरिका दोनों देशों का लिखित संविधान है। अमेरिका का राष्ट्रपति, अपने सेक्रेटरियों के माध्यम से राष्ट्र के अधिकार का प्रयोग करते हैं और देश पर शासन कहते हैं। राष्ट्रपति जन साधारण के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं, वे मन्त्री-मण्डल का गठन नहीं करते हैं, उसके बदले कुछ संख्यक सक्रेटरी नियुक्त करते हैं। किन्तु फान्स में मन्त्रीमण्डल है। जब ब्रिटेन में कोई मन्त्रीमण्डल नहीं रहता है, तब राजा अन्तर्वर्ती कालीन मन्त्रीसभा (Lame

Duck Ministry) तैयार कर लेते हैं। जितने दिन तक निर्वाचन के माध्यम से नया संसद गठित नहीं होता है, उतने दिन तक यही अन्तर्वर्तीकालीन मन्त्रीसभा लेकर राजा कार्यचलाते हैं। भारत में राष्ट्रप्रति के कोई अधिकार नही हैं, ऐसा कहा जा सकता है, वे सिर्फ हस्ताक्षर करते हैं, रबर स्टाम्प हैं। राष्ट्रपति को ऐसा कोई अधिकार नहीं है, जिसके द्वारा वे एक तत्त्वावधायक सरकार को भी (Caretaker government) परिचालित कर सकें। भारतीय संविधान में प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति को अपसारित कर सकते हैं; किन्तु राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री को अपसारित नहीं कर सकते । दूसरी दिशा में, प्रधानमन्त्री को संविधान में सब अधिकार दिया गया है, किन्तु वे जनसाधारण के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित नहीं होते हैं। वे प्रथम, संसद सदस्य के रूप में निर्वाचित होते हैं; उसके बाद उनका दल, उनको

प्रधान मन्त्री के रूप में मनोनीत करता है। राष्ट्रपति शासित अमेरिका का संविधान तुलनामूलक रूप से अन्यान्य संविधान से अच्छा है किन्तु अमेरिका का संविधानभी कुछ त्रुटिपूर्ण है। और वह त्रुटि है, यह कि वैयष्टिक अधिकार के ऊपर वहाँ सर्वाधिक महत्व आरोपित किया गया है। इसका अनिवार्य फल है निरंकुश पूंजीवाद । भारतवर्ष में भी आज वही दुरवस्था है-और उसके फलस्वरूप भारत में आज आञ्चलिकतावाद सरचढ़ा हो गया है। आदर्श संविधान रचना के लिये अतिरिक्त व्यष्टिस्वाधीनता पर कुछ नियन्त्रण रखना आवश्यक है। सब कुछ के ऊपर सामाजिक नियन्त्रण का प्रयोजन है, जिससे समष्टि स्वार्थ सर्वाधिक महत्व पा सके । संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के संविधान में मनुष्य की क्रयशक्ति की निश्चितता नहीं है। राष्ट्रपति चालित सरकार है सर्वश्रेष्ठ सरकार । राष्ट्रपति को प्रत्यक्ष रूप

से जनसाधारण का निर्वाचित प्रतिनिधि होना होगा, तथा वहाँ व्यष्टि स्वाधीनता, अवश्य ही कुछ परिमाण में नियन्त्रित होगी। संविधान की साधारण त्रुटियाँ -

प्रत्येक मनुष्य को जागतिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास का अधिकार है। किन्तु कुछ देशों में संविधान इस तरह लिखा गया है कि वहाँ सभी मनुष्य के सर्वात्मक विकाश का कोई सुयोग नहीं रखा गया है। संविधान होगा त्रुटिमुक्त और न्यायसङ्गत। संविधान की रचना जो करेंगे, वे किसी विशेष जनगोष्ठी या भाषागोष्ठी, अथवा विशेष धर्मीय सम्प्रदायभुक्त नहीं वे होंगे । वे किसी गोष्ठी के प्रति पक्षपात, राष्ट्रीय ऐक्य और संहति को विपन्न न कर सकेंगे, जिसके फलस्वरूप समाज की समग्र शान्ति और समृद्धि विघ्नित होती है।

इस विचार से भारतीय संविधान की कुछ त्रुटियाँ हमलोगों को दृष्टिगोचर होती हैं। ध्यान देना होगा कि यह भारतवर्ष अनेक जाति-धर्ममत-वर्ण-भाषा-सम्प्रदाय की वासभूमि है। इसलिये जो देश या राष्ट्र इतनी विचित्रमयतापूर्ण है, उसकी संविधान रचना करने के लिये, संविधान प्रणेताओं को हर ओर नजर रखना होगा, जिससे इस वैचित्य के बीच एक सुगम्भीर ऐक्य और संहति गठित हो उठे ।

भारत की जन-संरचना का वैशिष्ट्य यह है कि यहाँ ऑष्ट्रिक, मंगोलियन, निग्रोआयड और आर्य, इन चार जनगोष्ठियों के सम्मिश्रण से एक संकर (blen-ded) जनगोष्ठी गठित हुई है, किन्तु भारतीय संविधान के अन्तानहित वृटि के कारण इन सब विभिन्न जातियों के बीच सामाजिक नैकट्य, सांस्कृतिक उत्तराधिकार

(cultural legacy) समता बोध और राष्ट्रीय ऐक्य प्रतिष्ठित हुआ नहीं। इसके फलस्वरूप भारतीय उपमहादेश में विच्छिन्नतावादी मनोभाव जग उठा है।

भारतीय संविधान की कई अर्थनैतिक तथा मनस्तात्विक त्रुटियाँ :-

भारतीय संविधान में जो सब अर्थनैतिक त्रुटियाँ हैं, उनमें सब से अन्ततम है- यहाँ पूंजीपति के शोषण को प्रतिहत करने के लिये कोई व्यवस्था नहीं रखी गई है। क्योंकि स्वाधीनता आन्दोलनकारी नेतृवृन्द ने कोई अर्थनैतिक आन्दोलन नहीं किया। उनका आन्दोलन था सिर्फ ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन, जिसके फलस्वरूप स्वाधीनता का संग्राम सिर्फ राजनैतिक आन्दोलन के रूप

में सीमाबद्ध रह गया, उसने कभी अर्थनैतिक आन्दोलन का रूपपरिग्रह नहीं किया । १६४७ साल में स्वाधीनता प्राप्ति के बाद श्वेत जनगोष्ठी का शासन और शोषण का अवसान हो गया ठीक ही, किन्तु बादामी जनगोष्ठी का शोषण (brown exploitation) शुरू हुआ । १६४७ साल की स्वाधीनता से सिर्फ राजनैतिक मुक्ति आई थी, अर्थनैतिक मुक्ति आयो नहीं। आज भी वही अर्थनैतिक शोषण अव्याहत है ।

द्वितीयतः इस संविधान में मनुष्य की क्रय-क्षमता की वृद्धि की कोई व्यवस्था नहीं है। तृतीयतः राष्ट्रपति के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं है, जिसके द्वारा वे राष्ट्रीय अर्थनीति-संक्रान्त किसी विषय या विश्वृङ्खला को नियंत्रित कर सकें। भारतीय अर्थनीति नियंत्रित होती

है, कतिपय व्यवसायी से संचालित "चैम्बर्स औफ कौमर्स" के नाम से कई संस्थाओं के द्वारा । **द्रव्यमूल्य निर्धारण या नियन्त्रण करना अथवा अर्थनैतिक शोषण को प्रतिहत करने का कोई अधिकार भारतीय राष्ट्रपति को नहीं है, सिर्फ राष्ट्रपति ही नहीं, प्रधानमंत्री भी इस अवस्था का नियन्त्रण नहीं कर सर सकते हैं।** चतुर्वतः संविधान में सामाजिक अर्थनैतिक उन्नति के लिये ब्लोकभित्तिक योजना की व्यवस्था नहीं रखी गई है। पञ्चमतः देश में अर्थनैतिक भारसाम्य की प्रतिष्ठा के उपयुक्त कोई स्वच्छ धारणा भी इस संविधान में नहीं है।

इसके अलावे भारतीय संविधान में कितने मनस्तात्विक त्रुटि भी हैं। प्रथम त्रुटि है राष्ट्रीय भाषा के रूप में एक विशेष भाषा को सम्पूर्ण भारतीय जनगोष्ठी

के ऊपर थोप दिया गया है। एक विशेष अन्चल की भाषा को संविधान के द्वारा राष्ट्र भाषा के रूप में रूपान्तरित करके बन्यान्य भाषा-भाषी के ऊपर उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया होने के लिये वाध्य किया गया है। संविधान में इस प्रकार की त्रुटिपूर्ण भाषानीति गृहीत होने के फलस्वरूप अन्यान्य माषा-भाषी लोग राष्ट्रीय स्तरमें असम प्रतियोगिता के लिये सम्म्मुखीन हो रहे हैं। उन्हें हिन्दी अथवा अंग्रेजी सीखने के लिये बाध्य किया जा रहा है। अब, हिन्दी या अंग्रेजी कोई भी भारत की जनसाधारण की स्वतः स्फूर्त्ततं स्वाभाविक भाषा नहीं है। इसके कारण अ-हिन्दी भाषा-भाषो लोग द्वितीय श्रेणी के नागरिक में परिणत हुये हैं। भारत के समान अनेक भाषा-भाषी, बहुजातीय और बहु संस्कृति-सम्पन्न जन-गोष्ठी के लिये किसी अञ्चल विशेष की भाषा को, राष्ट्र भाषा का स्थान देना उचित नहीं है। ऐसी किसी भाषा

को राष्ट्र भाषा का स्थान देना उचित है जो किसी बिशेष अञ्चल की भाषा न हो। हिन्दी है तामिल, तेलगू, या तुलू भाषा के समान एक आञ्चलिक भाषा । हिन्दी भाषा की तरह जो कोई भाषा ही क्यों न हो, जबर्दस्ती करके कभी भी दूसरे के ऊपर थोपना उचित नहीं है।

संविधानगत भाव से भारतवर्ष है धर्म निरपेक्ष राष्ट्र। और पाकिस्तान है इस्लामिक राष्ट्र और नेपाल है हिन्दू राष्ट्र । वे विशेष किसी भाषा को दूसरे के ऊपर इच्छानुकूल थोप भी सकते हैं। नहीं भी थोप सकते हैं। किन्तु भारत के लिये वह चल नहीं सकता है। धर्मनिरपेक्षता को बचा कर रखने के लिये चाहिये, सभी मनुष्य की मानसिक- सामाजिक अर्थनैतिक उन्नति विधान के उद्देश्य में समान सुयोग तथा सुविधा ।

भारतीय संसद में, जब राष्ट्रभाषा क्या होगी, इस विषय में वितर्क चल रहा था, तब गण-परिषद इस प्रश्न के बारे में समान रूप से द्विधा-विभक्त हो गया था। राज्यसभा के चेयरमैन के रूप में डा० राजेन्द्र प्रसाद ने उसदिन उस संकट-जनक मुहुर्त्तत् में, अपने विशोषाधिकार का प्रयोग कर हिन्दी के अनुकूल अभिमत प्रकाश किया था। उनके एकमात्र जय-पराजय निष्पत्तिमूलक वोट (Casting vote) से हिन्दी ने, भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृति प्राप्त की ।

संस्कृत भाषा को ही भारत की राष्ट्र भाषा को मर्यादा प्रदान करना उचित है। संस्कृत है भारतवर्ष की वत्तंर्तमान भाषाओं की प्रायः सभी भाषाओं की आदि जननी। इसके अलावे अन्यान्य भारतीय भाषाओं के ऊपर भी संस्कृत भाषा का प्रभाव बहुत है। संस्कृत भाषा

के सीखने में हो सकता है ५-१०-५०-१०० वर्ष भी लग सकते हैं। संस्कृत को कोई अपनी लिपि नहीं है। इसलिये रोमन लिपि व्यवहार करना ही विधेय है। जो भी हो, सभी जन-गोष्ठी और भाषा-तात्विकों को मिलकर इस विर्तांकत विषय के सम्बन्ध में एक स्थिर सिद्धान्त ग्रहण करना ही, युक्तियुक्त है ।

द्वितीय मनस्तात्विक त्रुटि है, कानून की दृष्टि से कितने बैषम्य हो गये हैं। भारतीय संविधान घोषणा करता है कि यहाँ कानून की दृष्टि से सब समान हैं। किन्तु व्यवहारिक क्षेत्र में यह नीति अनुसृत नहीं होता है। जिसके फल-स्वरूप कानून और विचार के क्षेत्र में नाना प्रकार का वैषम्य दीख पड़ता है। यह वैषम्य विभिन्न गोष्ठियों के मनुष्यों के मन में, नानाप्रकार की

प्रतिक्रिया की सृष्टि करता है। सभी भारतराष्ट्र के नागरिक हैं। परन्तु सबों के लिये, कानून, समान सुयोग और सुविधा नहीं देता है। दृष्टान्त स्वरूप, हिन्दू-कानून में एक हिन्दू नागरिक एकाधिक विवाह नहीं कर सकता, किन्तु मुस्लिम-कानून के अनुसार एक मुसलमान नागरिक एक से अधिक विवाह करने का अधिकारी है। हिन्दू स्वामी अथवा हिन्दू स्त्री को विवाह विच्छेद का दावी लेकर अदालत का शरणापन्न होना होता है; किन्तु एक मुसलमान नागरिक विना अदालत की सहयता के विवाह विच्छेद का अधिकारी है। इसके अलावे मुसलमान स्वामी अपनी स्त्री को त्याग कर सकते हैं; किन्तु एक मुलसमान स्त्री अपने पति का त्याग नहीं कर सकती । इसके अलावे मुसलमान स्वामी को अपनी स्त्री को त्यागने में किसी प्रकार के कारण दिखाने की जरूरत नहीं पड़ती ।

सूचीपत्र

कानून की दृष्टि से वैषम्य, इस प्रकार की नाना प्रकार की समस्याओं की सृष्टि करता चल रहा है। ये सब त्रुटियाँ असल में संविधान में अन्तनिहित मनस्तात्विक त्रुटिजनित बातों के कारण हैं। संविधान में एक जनगोष्ठी के लिये एक प्रकार का कानून तथा दूसरी जनगोष्ठी के लिये दूसरे प्रकार क। कानून ऐसा होगा ही क्यों ? यहाँ एक ही कानून भारतीय कानून ही (The Indian Law) रहना उचित है। यह भारतीय कानून अवश्य ही मौल मानवीय मूल्य-बोध के ऊपर (Cardinal human values) ही प्रतिष्ठित रहेगा। तभी व्यवहारिक क्षेत्र में कानून की दृष्टि से सभी समान हैं- इस नीति की प्रतिष्ठा सम्भव है। और तभी कानून की ओर से सबों की रक्षा करना संभव होगा । सुतरां, भारतीय संविधान

से अविलम्ब इस प्रकार की, कानूनगत वैषम्यजनित मनस्तात्विक त्रुटियों को दूरीभूत करना उचित है।

तृतीय मनस्तात्विक त्रुटि है- प्राणी जगत तथा उद्भिज जगत् को ध्वंस के हाथ से रक्षा को कोई व्यवस्था भारतीय संविधान में नहीं है। नव्यमानवतावाद के आदर्श के नहीं रहने से व्यापक रूप से जीव जगत् और उद्भिज जगत् का ध्वंस हो रहा है, संविधान में इनकी सुरक्षा की भी व्यवस्था रहना उचित है। इस त्रुटि का अविलम्ब ही संशोधन करना आवश्यक है ।

चतुर्थतः केन्द्र और राज्य के बीच जो सम्बन्ध है, उसके बारे में परिष्कार या स्पष्ट रूप से संविधान में उल्लेखित नहीं है। इस कारण से केन्द्र-राज्य के सम्बन्ध

में भिन्नता उत्पन्न हो सकती है और उसके फलस्वरूप मानसिक दृष्टिकोण से सम्पूर्ण देश को क्षति हो सकती है। इस दिशा में दो विषय संविधान में परिष्कार रूप से उल्लेखित करना आवश्यक था (१) आत्मनियन्त्रण का अधिकार (२) युक्त राष्ट्रीय संरचना से कोई इच्छा करने पर अलग हो सकता है कि नहीं।

पञ्चमतः संविधान में उपजाति और परिगणित जाति के सम्पर्क में कोई निदिष्ट संज्ञा नहीं है। जात-पाँत की भित्ति से परिगणित जाति को स्वेच्छानुकूल लिखित हुआ है। अर्थनैतिक अनग्रसरता और शिक्षागत पश्चाद्वत्तिता की भित्ति से किसी परिवार या गोष्ठी को उपजाति या परिगणित जातिभुक्त नहीं किया गया है।

सांवैधानिक संशोधन -

वर्त्तमान काल में पृथ्वी के सभी देशों के संविधान में कम या ज्यादा संशोधन की प्रयोजनीयता है। संविधान के प्रसङ्ग में कितने विशेष विशेष संशोधन का प्रस्ताव लेकर आलोचना की जा सकती है।

(१) मन्त्रिमण्डल या संसद को रद्द करना या भङ्ग करना - राष्ट्रपति विशेष विशेष परिस्थिति में मन्त्री-सभा भङ्ग कर सकते हैं या संसद भङ्ग कर सकते हैं, यदि देश के भीतर कोई अन्तर्घातमूलक क्रिया कलाप के फलस्वरूप कोई आवश्यक अवस्था का उद्भव हो जाय अथवा यदि विधि शृङ्खला की (कानून की पद्धति) परिस्थिति सम्पूर्ण नियन्त्रण के बाहर चली जाय अथवा वहिः

शक्ति के शत्रुतामूलक आचरण के फलस्वरूप उद्भूत परिस्थिति से, अथवा यदि किसी गणतान्त्रिकपद्धति से निर्वाचित शासकदल संसद में अपनी संख्यागरिष्ठता खोकर संख्यालघुदल में परिणत हो जाय ।

मन्त्री मण्डल जिस दिन भङ्ग होगा, उससे एक महीने के अन्दर राष्ट्रपति को संसद के समक्ष उनके उस कार्य के लिये उपयुक्त कैफियत दाखिल करना होगा । यदि संसद इतः पूर्व ही भङ्ग घोषित हो जाय, तो राष्ट्रपति को संसद भङ्ग करने के छः महीने के अन्दर साधारण निर्वाचन की व्यवस्था करनी होगी, और नवनिर्वाचित संसद भवन में, निर्वाचन के एक मास के अन्दर सभी परिस्थितियों की व्याख्या पेश करनी होगी।

सूचीपत्र

२। अत्यावश्यक अवस्था विषयक संशोधन - राष्ट्रपति संसद की अनुमति के सापेक्ष किसी उपद्रवग्रस्त इलाके में छः मास के लिये आपत्कालीन अवस्था (Emergency) घोषणा कर सकते हैं। फिर भी, संसद की अनुमति लेने पर भी, राष्ट्रपति किसी स्थान में दो वर्ष से अधिक आपत् कालीन अबस्था चालू नहीं रख सकते हैं।

३। अन्तर्वर्तीकालीन मन्त्रीमण्डल (Lame Duck Ministry) - राष्ट्र-पति मध्य कालीन अस्थायी मन्त्रिपरिषद की आज्ञा या निर्देश मान भी सकते है, नहीं भी मान सकते हैं। यदि राष्ट्रपति मध्य कालीन मन्त्री-मण्डल की आज्ञा को अग्राह्य करें, तब वह संसद स्वाभाविक रूप से भङ्ग हो जायेगा

और साधारण निर्वाचन के माध्यम से नया संसद निर्वाचित होने पर, राष्ट्रपति एक मास के अन्दर नवनिर्वाचित संसद के समक्ष स्वयं सम्पूर्ण परिस्थिति की व्याख्या करेंगे ।

४। राष्ट्रपति तथा प्रधानमन्त्री का नैतिक मापदण्ड और आचरण: --- राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री को अवश्य ही एक उच्च नैतिक मानदण्ड और आचरण के प्रतिभू के अनुसार अपने को प्रतिष्ठित करना होगा। इसलिये राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री पद पर रहने के समय वे कोई विवाह-विच्छेद नहीं कर सकते, अथवा विवाह विच्छेद का अधिकार प्राप्त किसी नारी या पुरुष के साथ विवाह भी नहीं कर सकते। राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री के स्वामी या

स्त्री के जीवित रहने पर किसी अवस्था में द्वितीय पति या पत्नी नहीं हो सकती ।

5. विवृतिदान (वक्तव्य, घोषणा) के सम्बन्ध में राष्ट्रपति का अधिकार --- साधारण अवस्था में वक्तव्य या घोषणा करने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति का अधिकार अवश्य ही निरङ्कुश होना उचित नहीं है। स्वाभाविक परिस्थिति में संसद अथवा प्रधानमन्त्री के साथ परामर्श विना किये वे किसी प्रकार की विवृति या (वक्तव्य, घोषणा) नहीं करेंगे। स्वाभाविक परिस्थिति में, जब मन्त्रिमण्डल शक्तिश ली रहेगा, तब राष्ट्रपति को मन्त्रीमण्डल की राय के अनुसार ही कार्य करना होगा ।

6. गण-परिषद (Constituent Assembly):- संसद, गणपरिषद की भी भूमिका का निर्वाह कर सकता है, 'यदि संसद के शासक-दल का १/२ भाग संख्या गरिष्ठता में, या बहुमत में हो; क्योंकि बार बार संविधान संशोधन या परिवर्तन करने से संविधान की मर्यादा क्षुन्न होगी ।

7. भाषा:- देश की सभी जीवित भाषा को, राष्ट्र या सरकार को समान मर्यादा देना होगा ।

8. सभी नागरिक का समानाधिकार - राष्ट्र के सभी नागरिक को कानून के दृष्टिकोण से समान अधिकार देना होगा। सभी नागरिक को न्यूनतम प्रयोजन की पूत्ति का समानाधिकार देना होगा,

जिससे प्रत्येक व्यष्टि के वैयष्टिक और सामूहिक जीवन में प्रमासीनता का भारसाम्य प्रतिष्ठित हो सके ।

9. समीक्षक संस्था :- संश्लिष्ट देश के विभिन्न अञ्चल में अर्थनैतिक उन्नयन और प्रगति का मापदण्ड की पर्यालोचना के लिये राष्ट्रपति एक उच्च क्षमता-सम्पन्न समीक्षक संस्था नियुक्त करेंगे। मन्त्रीमण्डल और समीक्षक संस्था के बीच मत पार्थक्य दिखाई पड़ने पर राष्ट्रपति संसद की राय के अनुसार चलेंगे । फिर संसद और समीक्षक संस्था के बीच यदि मतभेव दीख पड़े तो राष्ट्रपति संश्लिष्ट देश के सर्वोच्च न्यायलय (Supreme Court) के निर्णय या आदेश प्राप्त करना चाहेंगे। इस विषय में सर्वोच्च न्यायालय, संविधान के

अनुसार जो आनुष्ठानिक आदेश देंगे, राष्ट्रपति उसके अनुसार ही चलेंगे ।

१० राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री के विरुद्ध मामला: कानून और संविधान की दृष्टि से सभी नागरिक का समान अधिकार है। इसलिये देश के सर्वोच्च न्यायालय में, देश के किसी मनुष्य के विरुद्ध मामला दायर किया जा सकता है। इतना ही नहीं, राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री के विरुद्ध भी मुकदमा दायर किया जा सकता है ।

११। आत्मनियन्त्रण और गण-वोट (जनता को मतदान) का अधिकार : -देश के किसी अञ्चल में जनता के मतदान की भित्ति से आत्मनियन्त्रण का

अधिकार मान लिया जा सकता है। और उस जन-मतदान की परिचालना करेगा गण-परिषद । केन्द्रीय सरकार के कठोर नियन्त्रण और तत्वा-धान में और मुख्य निर्वाचन कमिश्नर की व्यवस्था के अनुसार वह जन-मतदान प्रचालित होगा ।

१२. शिक्षा:- सम्बन्धित राष्ट्र को सभी नागरिक के लिये प्राथमिक शिक्षा की गारण्टी देनी होगी। शिक्षा को सभी प्रकार के राजनैतिक हस्तक्षेप के बाहर रखना होगा ।

१३. राष्ट्रव्यापी एक ही कानून और संविधान :- एक स्वाधीन और सर्वभौम राष्ट्र का सर्बत्त एक ही

कानून और संविधान (Constitution) प्रचलित रहना उचित है। क्योंकि कानून और संविधान की दृष्टि से प्रत्येक नागरिक का समान अधिकार स्वीकृत है। एक ही राष्ट्र के विभिन्न अञ्चल के निवासी एक ही प्रकार के कानूनगत और सांवैधानिक अधिकार भोग करेंगे, यह संगत है। इस विचार से कश्मीर जो अधिकार और सुयोग सुविधा भोग करता है, वह एकदम समीचीन नहीं है। यह अत्यन्त विसदृश बात है कि एक कश्मीर का निवासी बंगाल या महाराष्ट्र में जाकर जमीन जायदाद खरीद कर घर-द्वार बनाकर सुख सुविधा के साथ बस सकता है; लेकिन एक महाराष्ट्रीय या बंगाली, एक ही राष्ट्र का नागरिक होते हुये भी कश्मिर में उस सुख-सुविधा से वञ्चित रहेंगे, इस

प्रकार की वैषम्य-मूलक व्यवस्था युक्तिसंगत है क्या ?

१४. विश्व राष्ट्र - विश्वराष्ट्र की प्रतिष्ठा के लिये एक विश्व-संविधान का भी प्रयोजन है। इसलिये इस प्रकार के संविधान में ऐसी अनेक नीति और अधिकार की तालिका (A chartar of Principles or Bill of Rights) होनी चाहिये जो संविधान के अन्तर्भुक्त होना चाचिये, जिस में अन्ततः चार विषय का समावेश अवश्य हो-

क) हमलोगों को इस पृथ्वी ग्रह के सभी जीवजन्तु और उद्भिजवर्ग को पूर्ण सुरक्षा की निश्चितता देनी होगी ।

ख) सभी देश के संश्लिष्ट नागरिकों को क्रय-क्षमता की निश्चितता देनी होगी ।

ग) सभी देशों के संविधानों में संश्लिष्ट नागरिकों को, अन्ततः चार मौलिक अधिकारों की निश्चितता देनी होगी -

१) धर्मानुशीलन का अधिकार (२) सांस्कृतिक ऐतिह्यरक्षा का अधिकार (३) शिक्षा और मातृभाषा में व्यक्तिकरण का अधिकार (४) उल्लिखित तीन अधिकारों में से किसी एक के साथ मौल मानवीय नीति का विरोध दिखायी देने पर संश्लिष्ट अधिकार को तत्क्षण संकुचित करना होगा, अर्थात् सभी

अवस्थाओं में मौल मानविक नीति को सर्वाग्र स्थान देना होगा ।

अन्त में फिर कहता हूँ पृथ्वी के समग्र देशों के संविधानों में कुछ कुछ दोष-त्रुटि है । संविधान-रचना करने वालों के पास मेरा अनुरोध है कि वे अपने-अपने देश की सांवैधानिक त्रुटि-विच्युतियों को दूर करने के समय उल्लिखित विषयों की और थोड़ा ध्यान देंगे ।

(२२ सितम्बर, १९८६, कलकत्ता)

सेवा-मनस्तत्व और गोष्ठी-मनस्तत्व-

सूचीपत्र

मानव समाज एक और अविभाज्य है। किन्तु आज कुसंस्कार, भावजड़ता, संकीर्णता, विच्छिन्नतावाद और विभिन्न 'इज्मों' के मुख में ग्रास के रूप में पड़ जाने से मानव-समाज ध्वंस होने पर तैयार है। इस अवस्था में मानव समाज को एक और अखण्ड रूप में गठित करने के लिये सेवा और कल्याण का मनोभाव लेकर, संश्लेशन का पथ चुन लेना आवश्यक है। समाज को सर्वाङ्गसुन्दर गठन करने के लिये कोई संश्लेषण का पथ, और कोई भ्रान्तिवश अथवा स्वार्थ प्रणोदित होकर ज्ञातसार रूप में विश्लेषण का पथ चुन ले सकते हैं। इसलिये पहले ही बोलना उचित है कि विश्लेषण के माध्यम से किसी व्यष्टि स्वार्थ की सिद्धि हो हो सकती है, अथवा सामयिक रूप में किसी गोष्ठी-स्वार्थ की कुछ दिनों के लिये पूत्ति हो सकती है, किन्तु उससे स्थायीरूप

से और सर्वात्मक रूप से मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। मानव समाज का सामग्रिक उन्नयन के लिये एकान्तरूप से संश्लेषण का पथ ही आवश्यक है। अब देखा जाय संश्लेषण और विश्लेषण बोलने से सही रूप में क्या समझा जाता है। सार्वभौमिक आदर्श के माध्यम से वैचित्य में ऐक्य की प्रतिष्ठा करना; सीधी बात है- अनेक को एक करना ही संश्लेषण का यथार्थ रूप है। दूसरी ओर एक अविभाज्य को अनेक करने की प्रचेष्ठा है विश्लेषण का पथ ।

समाज-वैज्ञानिक लोग, यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि परिवेशगत, दैहिक संरचनागत, संस्कारगत, भौगोलिक प्रभृति कारण से मनुष्य में आपतः रूप में तारतम्य सृष्टि होती है। आपतः इसलिये कहा कि आपेक्षिक तारतम्य की भित्ति से यह पार्थक्य रहने पर

भी वस्तुनः रूप में मानव समाज एक और अविभाज्य है। अभी कोई यदि इस आपतः पार्थक्य का शुयोग लेकर अविभाज्य मानव समाज को विभक्त करना चाहे, तो कहना पड़ेगा कि वे विश्लेषण का पथ पकड़ रहे हैं। इस प्रकार की चिन्तनधारा ही मानवता विरोधी है, इसके द्वारा मानव समाज का प्रकृत कल्याण कभी संभव नहीं है ।

एक उदाहरण लें। मानो, रामबाबू नाम के एक व्यष्टि, एक भद्र मनुष्य को दो लड़का है-यदु, मधु। अभी परिवेशगत, संस्कारगत प्रभृति कारणों से एक तो शिक्षित है, और दूसरा अशिक्षित हो सकता है। स्पष्टतः लक्षणीय यह है कि आपतः पार्थ्यक्य के मध्य भी है एक परम सत्य दोनों ही रामबाबू के पुत्र हैं। परिवेशगत स्वभाव का आश्रय कर कोई यदि दोनों के बीच विभेद

प्रवृष्टि करना चाहें, तो कहना होगा- उन्होंने विश्लेषण का पय अवलम्बन किया है, और यदि कोई दोनों को एक दृष्टि से देखते हैं तो उनका पथ हैं संश्लेषण का पथ ।

अब, यह जो विश्लेषण-मूलक दृष्टिकोण है, जो एक को अनेक में रूपान्तरित करते हैं, उसके द्वारा स्थायी कल्याण होना सम्भव नहीं है; क्योंकि इस तरह का चिन्तन विच्छिन्नतावाद का आह्वान करता है, जिसकी परिणति ध्वंस छोड़ कर और कुछ नहीं है। इसलिये मनुष्य का कल्याण जो चाहते हैं, उन्हें विश्लेषण के पथ का परिहार कर संश्लेषणात्मक पथ को ग्रहण करना होगा। नहीं तो वे मानव समाज को और ध्वंस की ओर ढकेल देंगे ।

तुमलोग देखोगे विच्छिन्नतावाद का आश्रय कर अनेक राजनैतिक दल अपने अस्तित्व को टिका कर रखना चाहते हैं। जो इस प्रकार का कार्य करते हैं, वे बहुत बार अपने को बचाने के लिये और, जनता को धोखा देने के लिये, दूसरों को विच्छिन्नतावादी कह कर चिल्लाते हैं, जिससे जनता समझ न पाये कि असली विच्छिन्नतावादी कौन है ? यहाँ यह कहना आवश्यक है कि इस दिशा में वृहत्तर जनस्वार्थ की अपेक्षा दलीयस्वार्थ, मानव-कल्याण की अपेक्षा, गोष्ठी-स्वार्थ बड़ा हो उठता है। और यही गोष्ठी केन्द्रिक सङ्कीर्ण स्वार्थ, बाद को मान कर चलने से, वे अन्य के सांस्कृतिक अर्थनैतिक अधिकार को खर्व कर डालते हैं, या मनुष्य के सर्वात्मक विकाश की ओर विराट विघ्न बनते हैं। मैं इसके पहले कई बार बोल चुका हूँ इस पृथ्वी पर कोई उपेक्षणीय नहीं है। इसलिये गोष्ठी-स्वार्थ

को बड़ा बना कर देखने से यदि अन्य उपेक्षित होते हैं, दूसरों के विकाश का पथ अवरुद्ध होता है, तो उसे क्या समझा जायेगा? इसलिये संश्लेषण का पथ उपेक्षा का पथ नहीं है। वरन् सबों को साथ लेकर आगे चलने का पथ ही है- संश्लेषण का षथ ।

इस बंगाल में जात-पाँत, ऊँच-नीच, प्रभृति सङ्कीर्ण चिन्तन के माध्यम से, अथवा छोटी-छोटी अनुन्नत गोष्ठियाँ अर्थनैतिक असच्छलता (घनाभाद) सुयोग पाकर, एकदम दलीय स्वार्थ के कारण एक ही बंगाल के बीच भेद विभेद सृष्टि हो रही है। यह जो क्षुद्र-स्वार्थ-सम्पृक्त विच्छिन्नतावादी विचार है वह निश्चित ही विश्लेषणात्मक है। स्वभावतः इससे बंगाल और बंगालियों का सामहिक कल्याण तो होगा ही नहीं, वरन् वह नये ढंग से बंगालियों के बीच विभाजन श्रृष्टि

करता है। इस दिशा में निश्चित ही यदि बंगालिस्तान का कल्याण करना है, तब ब्लौक भित्तिक अर्थनैतिक योजना ग्रहण करना होगा। और उसी संश्लेषणमूलक दृष्भिंगी की सहायता से सभी को एक प्लैटफॉर्म पर लाना होगा। जो भी हो, यह जो प्ररोचनामूलक उत्तेजना, वह निश्चय ही विश्लेषणात्मक मनोभङ्गी प्रसूत विच्छिन्नतावादी चिन्तन के कारण है।

अब, बात यह है कि समाज गठन के क्षेत्र में दो प्रकार का मनस्तत्व कार्य कर सकता है। एक हैं सेवा मनस्तत्व या सार्विक जनकल्याण के उद्देश्य में उद्घोधित, दूसरा है गोष्ठी केन्द्रिक मनस्तत्व या क्षुद्र गोष्ठी की उन्नति के मध्य सीमाथित । जितने राजनीतिविद् सेवा और जनकल्याणमूलक मनस्तत्व के धारक या वाहक हैं वे कभी भी राजनीति को, नीति से

पृथक करके नहीं देखते है। स्वभावतः उनकी चिन्तनधारा वैयष्टिक स्वार्थ तथा गोष्ठी-स्वार्थ के उर्ध्व ही रहती है। दूसरी दिशा में जो गोष्ठी मनस्तत्व के परिपोषक हैं, वे अपने अपने गोष्ठी-स्वार्थ को बड़ा बना कर देखना चाहते हैं, जिस किसी प्रकार से अपनी अपनी गोष्ठी को दूसरे के ऊपर प्रभुत्व स्थापना की चेष्टा में मत्त हो उठते है। उसी के फलस्वरूप गोष्ठी- गोष्ठी में संघर्ष अनिवार्य हो उठता है। संश्लेषणात्मक मनोभाव के मध्य से जो समिति प्रतिष्ठित हो सकती है, उससे वह अनेक दूर चला जाता है। और सिर्फ वही नहीं, अपने प्रभुत्व को प्रतिष्ठित करने के लिये वे विच्छिन्नतावाद और वाक्-सर्वस्व विप्लवी मनोभाव का आश्रय लिये रहते हैं..... 'नीति' से दूर रह कर 'राज' चलाने की चेष्टा में उदग्र हो उठते हैं।

अब, ये जो दो प्रकार के मनस्तत्व, इन्हीं से जन्म लेती है समाज के सामने दो प्रकार की चंतना। जो सेवा का मनोभाव लेकर आगे बढ़ते हैं, उनकी चेतना अवश्य ही होतो है संश्लेषणधर्मी। और जो व्यष्टि-स्वार्थ और संकीर्ण गोष्ठी स्वार्थं को बड़ा बना कर देखते हैं, उनकी चिन्तनधारा होती है विश्लेषणधर्मी ।

सुनने में आता है कि विभिन्न जीव-जन्तुओं में मनुष्य का मांस अधिक सुस्वादु होता है। इसलिये जो बाघ एकवार नरमांस का स्वाद पा चुका है, वह वन में मनुष्य को नहीं पाने पर गाँव में ढुक जाता है। गाँव में ढुक कर वे गृहपालित पशु की अपेक्षा मनुष्य को पाकर, उसी के ऊपर प्रथम झपटता है। गोष्ठी चेतना में जो उद्‌बुद्‌ध होते हैं, जिसकी चेतना में विश्लेषणमूलक मनोभाव है, विच्छिन्नतावाद, जिनकी मज्जामें, धमनी

में, रक्त के गति प्रवाह में है, वे आज मनुष्य के मांस के लोभ से लोभातुर हैं। इसलिये आज संश्लेषणत्मक चिन्तनधारा का परिहार कर वे गोष्ठी मनस्तत्व के माध्यम से चालित होते हैं, और राजनीति के वन में विच्छिन्नतावाद का आश्रय कर, ओट में बैठे हैं-कब कौन गोष्ठी को करायत्त कर रक्तपान किया जायेगा और उनके चमड़े से तैयार डुगडुगी बजाते दूसरे को विच्छिन्नतावादी कर प्रचार किया जायेगा ।

तुमलोग जो प्राउट के आदर्श में विश्वास करते हो, तुमलोगों को इधर नजर रखना होगा । तुमलोगों को याद रखना होगा - बन्दूक की नाली नहीं, सेवा मनस्तत्व के माध्यम से, जिते गये मनुष्य के आत्मिक शक्ति ही है क्षमता का उत्स । जनता सेवा चाहती है। सही में वह सेवा चाहती है। प्राउट इस सेवा तथा

जनकल्याण के उद्देश्य से, सर्वजन के हित के लिये रचित हुआ है। तुमलोग अतिशीघ्र 'प्राउट' दर्शन के माध्यम से एक अविभाज्य मानव समाज का गठन कर लो ।

परमपुरुष की सेवा की आकूति से ही मनुष्य का सेवा-मनस्तत्व जन्म लेता है। मनुष्य में जब उस भूमासत्ता की सेवा की मनोवृत्ति जिसमें नहीं है, उसमें कभी भी सेवा मनस्तत्व जन्म नहीं ले सकता। इसलिये एक सुन्दर और अखण्ड समाज संरचना तैयार करने के लिये आध्यात्ममुखी मानसिकता रहनी ही होगी । नहीं तो सेवा-मनस्तत्व का जागरण तथा विकाश सम्भव नहीं है।

(१० दिसम्बर, १६८७ कलकत्ता)

सूचीपत्र

कई प्रश्नोत्तर

प्रश्न :-

मनुष्य की आशा-आकांक्षा और मनुष्य का सामर्थ्य- इन दोनों के बीच कोई समता है क्या? अर्थात् मनुष्य जो जो चाहता है, और उसे पाने के लिये जितना शक्ति-सामर्थ्य आवश्यक है, उतना मनुष को है क्या ?

उत्तर :-

मनुष्य की आशा-आकांक्षा का अन्त नहीं है। और वह भी कितने विचित्त प्रकार का है। इस तुलना में मनुष्य के सामर्थ्य की एक सीमा है, यद्यपि मनुष्य के

सामर्थ्य का परिमाण बहुत है। इसलिये अपेक्षिक जगत् में मनुष्य को सीमित सामर्थ्य है, और अफुरन्त आशा-आकांक्षा के बीच कोई आपाततः समता है, ऐसा तो मालूम नहीं पड़ता। परन्तु मनुष्य यदि अनवरत मानसाध्यात्मिक साधना के द्वारा अपनी प्रसुप्त शक्ति को जगाये या बढ़ा सकता है, तो आकांक्षा और सामर्थ्य के बीच एक समता आ सकती है। साधारण अवस्था में एक असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न व्यटि की शक्ति के सौ के पाँच, दस भाग मात्र ही कार्य में लग पाते हैं। बाकी भाग अव्यवहृत ही रह जाता है। यदि सामर्थ्य का सौ में सौ भाग कार्य में लगाया जाय, तो मानव समाज का कितना उपकार होगा !

प्रश्न:-

सामूहिक स्वार्थ (Collective spirit) और वैयष्टिक स्वाधीनता (individual right) इन दोनों में एक सुन्दर सामाञ्जस्य विधान कैसे सम्भव है ?

उत्तर:-

बात तो थोड़ी कठिन है। असम्भव नहीं है, यदि मोटा-मोटी रूप से कई विशेष दिशाओं की ओर नजर दिया जाय तो, जैसे-

१। युक्तिवादी दृष्टि भङ्गी को लेकर वैयष्टिक और सामूहिक जीवन में सम-समाज-तत्व को निष्ठा के साथ मान कर चलना होगा ।

२। वैयष्टिक और सामूहिक जीवन में नव्यमानवता भावधारा को मान कर चलना चाहिये ।

३। भौतिक स्तर में मोटामोटी रूप से सीमित स्वाधीनता (क्योंकि भौतिक सम्पत्ति तो सीमित है), और मानसिक तथा आध्यात्मिक स्तर में पूर्ण स्वाधीनता की नीति मान कर चलना चाहिये (क्योकि मानसिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति असीमित है) ।

४। मानसाध्यात्मिक क्षेत्र में एक संश्लेषणात्मक पथ पकड़ कर चलना पड़ता है।

प्रश्न :-

राष्ट्रीयतावाद और साम्प्रदायिकतावाद भी क्या भावजड़ता के दोष से भरा दुष्ट रूप है ?

उत्तर :-

हाँ, राष्ट्रीयतावाद और साम्प्रदायिकतावाद दोनों ही भावजड़ता के दोष से भरे दुष्ट हैं। क्योंकि राष्ट्रीयतावाद का जन्म होता है मनुष्य की भोम-प्रवणता (Geo-sentiment) से. बऔर साम्प्रदायिकतावाद का जन्म होता है युक्तिजित, अवैज्ञानिक उपधर्म या मजहवी अन्ध-विश्वास से ।

प्रश्न :-

पूंजीवाद और साम्यवाद-इन दोनों में कौन अधिकतर मनस्तत्व सम्मत है ?

उत्तर :-

कम्युनिजम या साम्यवाद की तुलना में

कैपिटलिज्म या पूंजीवाद कुछ मनस्तत्व सम्मत है, यद्यपि दोनों ही बुटिपूर्ण सामाजिक-अर्थनैतिक मतवाद हैं। और इसलिये वे समर्थन योग्य नहीं हैं। कम्युनिज्म में मनुष्य के अवारित मानस अभिव्यक्ति का सुयोग नहीं है, बजल सामाजिक-अर्थनैतिक तथा राजनैतिक बाधानिषेध का घेरा-जाल में मनुष्य की चिन्तन-धारा, सीमित लक्ष्मण-रेखा के भीतर ही, चक्कर खाकर मरती रहती है।

पूँजीवाद में तत्वतः दृष्टि से इस प्रकार का कोई बाधा निषेध नहीं है। किन्तु वस्तुतः बाघा निषेध कुछ तो है ही।

प्रश्न :-

कम्युनिष्ट देशों में सब कुछ लौह यवनिका के अन्तराल में बैंक कर रखने की चेष्टा क्यों की जाती है?

उत्तर :-

क्योंकि वे अपने दर्शन या मतवाद की आभ्यन्तरोण त्रुटि-विच्युति और असङ्गतियों के सम्बन्ध में खूब सजग हैं। इसलिये वे नहीं चाहते हैं कि स्वाधीन विश्व, उनका सब कुछ जान जाय ।

प्रश्न :-

कम्यून सिस्टम क्या मनुष्य के बहुदैशिक उन्नति के साथ सङ्गतिपूर्ण है? मनुष्य के सार्वभौमिक विकाश का अनुकूल परिवेश कम्यून सिस्टम में है क्या ?

उत्तर :-

अवश्य ही नहीं। इस प्रकार के सामाजिक अर्थनैतिक व्यवस्था का मूल उद्देश्य है, मुख्यतः अर्थनैतिक क्षेत्र में और गौणतः शिक्षा संस्कृति में उन्नति करना । किन्तु मनुष्य की बहुदेशिक उन्नति के लिये कम्यून सिस्टम को कभी भी एक आदर्श व्यवस्था के रूप में मान लेना उचित नहीं है। क्योंकि मनुष्य की यथार्थ प्रगति के लिये मनुष्य के भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक तीन मुख्य स्तर हैं, और पाँच उपस्तर है,

जैसे-अर्थनैतिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और मानसाध्यात्मिक स्तर में उन्नति करना । केवल तभी उसको कहा जायेगा (Multilateral Deve-lopment) या बहु वाह्विक प्रगति । मनुष्य की सामाजिक और अर्थनैतिक व्यवस्था यदि नव्यमानवतावाद या Neohumanism के ऊपर आधारित न हो, तो मनुष्य को चरम लक्ष्य की ओर चलने की गति में द्रुति भी नहीं होती, और जितनी उन्नति होती है, उसे सर्वात्मक या सर्वदेशिक नहीं कहा जा सकता। खण्डित प्रगति, प्रगति नहीं है।

प्रश्न :-

कम्यून सिष्टम का मनस्तात्विक त्रुटियाँ क्या क्या हैं?

उत्तर :-

कश्यूनसिष्टम के अनुसार समाज एक उत्पादन और विनिमय केन्द्र के रूप में परिणत हो जाता है। और वह परिचालित होता है, कितने कठोर और जबर्दस्त नियम-कानून के द्वारा। इस प्रकार के श्वासरोध-यान्त्रिक जीवन-यापनपद्धति नास्तिक मनोभावापन्न नेतृस्थानीय मनुष्यों के मन में एक स्थूल भोगवादी मानसिकता को जन्म देता है। जो श्रमिक और कर्मचारी होते हैं, वे अपने कार्य के साथ अपने को एकात्म करने की प्रेरणा नहीं प्राप्त करते हैं। उनके आभ्यन्तरीण वैयष्टिक शक्ति सामर्थ्य को विकशित करने के लिये स्वाधीनता भी नहीं रहती है। किसान यदि अनुभव करता है कि कृषि का खेत उसका अपना है और कृषि के खेत की उन्नति होने से उसका भी साश्रय होगा, तभी न वह मन-प्राण लगा

कर कृषी की उन्नति के साथ अपने को एकात्म कर देगा । ठीक वैसे ही मानसिक और आध्यात्मिक जगत में यदि मनुष्य को अवारित स्वाधीनता दी जाय, तो मानव समाज अवश्य ही अधिकतर मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति अर्जन करेगा ।

प्रश्न :-

विश्व राष्ट्र प्रतिष्ठित होने से मनुष्य क्या क्या सुयोग-सुविधा का भोग करेगा ?

उत्तर :-

1. विश्वराष्ट्र प्रतिष्ठित होने पर, मनुष्य कितनी ही विशेष सुयोग-सुविधाएँ भोग करेगा वे ये हैं- प्रत्येक राष्ट्र को जो उसकी स्वाधीनता और

सार्वभौमत्व बचा कर रखने के लिये सामरिक और प्रतिरक्षा पर जो विपुल परिमाण में अर्थ-व्यय करना पड़ता है, वह बन्द हो जायेगा और उसी परिमाण में अर्थ, अन्यान्य उन्नयन मूलक कार्य पर व्यय किया जायेगा ।

२) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रायः वाद-विवाद या मूल समझने वूझने के कारण जो प्रभूत परिमाण में मानसिक यातना वा मनः क्लेश भोग करते हैं, मनुष्य उससे अव्याहति प्राप्त करेंगे ।

३) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में युद्ध विग्रह बन्द होने से निरीह सैनिक और असामरिक नरनारी का रक्तपात बन्द होगा ।

सूचीपत्र

४) मनुष्य मुक्त पृथ्वी के एक प्रान्त से अन्य प्रान्त में अबाध यातायात, वसने का, अर्थनैतिक पुनर्वास का बहुत सुयोग सुविधा भोग करेगा ।

प्रश्न :

हमलोग क्या चाहते हैं- प्रत्येक व्यष्टि पर आय वृद्धि या क्रय-क्षमता की वृद्धि ?

उत्तर :-

प्राउट के विचार से व्यष्टि पीछे आय, सामाजिक और अर्थनैतिक उन्नति का कोई वैज्ञानिक निर्भरयोग्य मानदण्ड नहीं है। इसलिये मनुष्य के प्रति व्यष्टि पीछे आय की भित्ति से कोई देश या

राष्ट्र की आर्थिक उन्नति का सुस्पष्ट चित्र पाया नहीं जा सकता । वरन् प्रति व्यष्टि पीछे आय को, उन्नति का मानदण्ड रखने से मनुष्य को गलत पथ पर परिचालित होने की सम्भावना अधिक है। क्योंकि इस पद्धति से सरल गणित के हिसाब से देश की जनसंख्या को प्रतिव्यष्टि आय देकर गुणा करने से जिस परिमाण में सम्पत्ति पायेंगे, वही होगा देश का Gross National Income. इससे किसी देश की जन-गोष्ठी की, जीवन-यात्रा का मानदण्ड का विशुद्ध चित्र पाया नहीं जा सकता। क्योंकि, इसके द्वारा समाज के धन-षम्य का चित्त खुल कर सामने नहीं आता । प्रति व्यष्टि पीछे आय के माध्यम से किसी एक मनुष्य की औसतन आय कितनी होगी जान सकेंगे । किन्तु राष्ट्रीय नियन्त्रन-

वण्टन के क्षेत्र में जो एक विराट व्यवधान् हो गया है, उसका चित्न तो पायेंगे नहीं। फिर यदि मुद्रास्फीति की बात पकड़ी जाय, तो प्रति व्यष्टि आयतत्व की यौक्तिकता और कम हो जायेगी। दूसरी दिशा में मनुष्य की क्रयक्षमता ही है, एक देश या राष्ट्र की आर्थिक उन्नति का सही द्योतक । क्योंकि क्रय-क्षमता है- इसका अर्थ हुआ, मनुष्य अपनी आय के द्वारा दैनन्दिन प्रयोजनीय सामग्री खरीद करने में सक्षम होगा। इसलिये सामाजिक और अर्थनैतिक क्षेत्र में प्राउट की सम्पूर्ण परियोजना का मूल लक्ष्य ही हुआ - जनता कीक्रय-क्षमता बढ़ाना । साधारण भुक्तभोगी मनुष्य मात्र ही जानते हैं कि अनेक समय बहुत रुपये की आय करके भी मनुष्य अपने दैनन्दिन प्रयोजनीय द्रव्य सामग्री संग्रह

कर नहीं सकता। फिर, अनेक समय ऐसा भी होता है कि आर्थिक आय होने पर भी मनुष्य की, जिस परिमाण में क्रय-क्षमता रहती है, उससे वह सहज में ही अपने आवश्यक प्रयोजन को पूरा कर लेंगे। इसलिये कहा था कि प्रत्येक व्यष्टि पीछे आय नहीं, क्रय-क्षमता ही अर्थनैतिक उन्नति का सही मानदण्ड है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य का, जिससे अपने आवश्यक दैनन्दिन व्यवहार्य नमक-तेल, चावल-दाल, तर तरकारी, कपड़ा-लत्ता, कोयला, औषधि-पत्न, बही-खाता सब कुछ जिससे उसके आर्थिक सामर्थ्य के परिभू में आ जाय ।

प्रश्न :- कृषि निर्भर और कृषि सहायक उद्योग में पार्थक्य क्या है ?

सूचीपत्र

उत्तर :-

कृषि-निर्भर उद्योग उसे कहेंगे जो, कृषि उत्पादित वस्तु पर निर्भर करता है-जैसे-चटकल (जुटमिल)' तेलकल, धानकल, इत्यादि । और कृषि सहायक उद्योग उसे कहेंगे, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि के गुणगत या परिमाणगत उन्नति की दिशा में सहायता करता है। जैसे- ट्रैक्टर का कारखाना, उर्वरक का कारखाना, सींचने का सामान-सरञ्जाम, पावर टिलर इत्यादि

समाप्त

**********X**********

सूचीपत्र

घोषणा

प्रउत* (प्रगतिशील उपयोगिता तत्त्व) एक नया

* प्रउत को प्रउट भी कहते हैं अंग्रेजी Progressive Utilisation Theory का संक्षेप PROUT के अनुसार।

आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक सिद्धांत है, जिसे आनंद मार्ग प्रचारक संघ के धर्म गुरु श्री प्रभात रंजन सरकार उर्फ श्री श्री आनंदमूर्तिजी ने प्रतिपादित किया हैं । धर्म गुरु के रूप में, वे मानव इतिहास में एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने विश्व के सभी लोगों की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक मुक्ति के लिए एक सिद्धांत दिया। उनके विचार प्रउत पुस्तकों में अभिव्यक्त हैं। उन्होंने न केवल विचार दिए, बल्कि यह भी भविष्यवाणी की ----कि एक दिन अवश्य

सूचीपत्र

आएगा जब इस पृथ्वी ग्रह के लोग इसे पूरे मन से स्वीकार करेंगे।

विश्व के सभी लोगों की आर्थिक, राजनीतिक और अन्य समस्याओं का न्यायोचित समाधान खोजने के उद्देश्य से प्रउत पढ़ें और दूसरों को भी पढ़ने दें।

मानव निर्मित समस्याओं के कारण, विश्व आज विनाश के कगार पर है। प्रउत की नीतियों को लागू करके ही समाज की सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

प्रउत की नीतियों को लागू किए बिना, इस विश्व को किसी भी तरह से विनाश से नहीं बचाया जा सकता।

सूचीपत्र

आप नीचे दिए गए लिंक पर क्लिक करके ऐसी कई पुस्तकें पा सकते हैं।

www.anandamargaideas.com

यदि आपके कोई प्रश्न हों, तो आप पूछ सकते हैं।

आचार्य सत्यबोधानंद अवधूत

व्हाट्सएप नंबर 8972566147

अक्टुबर 2025

।

सूचीपत्र

सूचीपत्र